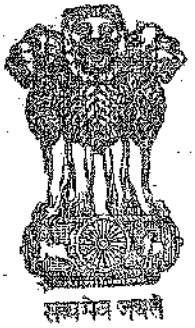

भारत का विधि आयोग

अभिरक्षान्तर्गत अपराध

संबंधी

एक सौ बावनवीं रिपोर्ट

1994

के० एन० सिंह
(भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति)

अध्यक्ष
विधि आयोग
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110 001
टेलीफोन का० : 384475
नि० : 3019438
अगस्त 26, 1994

अ० शा० पत्र सं० : 6(3)(16)/92-एल सी (एल एस)

प्रिय प्रधान मंत्री जी,

"अभिरक्षान्तर्गत अपराध संबंधी 152वीं रिपोर्ट (13वें विधि आयोग की 9वीं रिपोर्ट) इसके साथ अग्रेषित करते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष है।

पुलिस और अन्य विधि प्रवर्तनकारी अभिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग और संदिग्ध व्यक्तियों को यातना के परिवाद हमारे समाज के लिए चिन्ता का विषय रहे हैं। अभिरक्षान्तर्गत अपराध और पुलिस अभिरक्षा में व्यक्तियों को यातना देना जघन्य तथा विभत्स कार्य हैं क्योंकि वे अरक्षित नागरिक के विरुद्ध लोक प्राधिकारी द्वारा अभिरक्षान्तर्गत न्यास का विश्वासघात व्यक्त करते हैं, ऐसे व्यवहार, मूल अधिकारों और मानव अधिकारों का अतिलंघन है। इस त्रासदी के नियंत्रण की अविलंब आवश्यकता है। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, यातना, क्षति और मृत्यु के शिकार व्यक्तियों में से अधिकांश व्यक्ति हमारे समाज के कमजोर वर्ग के हैं, अतः विधि आयोग ने, स्वप्रेरणा से इस विषय को गहन अध्ययन के लिए हाथ में लेना आवश्यक समझा था।

आयोग ने इस विषय पर जनमत प्राप्त करने के लिए एक कार्यपत्र परिचालित किया था। एक सेमिनार का भी आयोजन किया गया था जिसमें अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की समस्या पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई थी। आयोग ने संवैधानिक और विधिक उपबंधों का गहन विश्लेषण करने के पश्चात् यह रिपोर्ट तैयार की है जिसमें मौलिक और प्रक्रियात्मक विधि के, जिनके अंतर्गत भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के कुछ उपबंधों के संशोधन भी हैं, संशोधन के लिए सिफारिश की है। सिफारिशें, शक्ति के दुरुपयोग की संभावना को अंतर्विष्ट करने और शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर के संदाय का उपबंध करने की दृष्टि में रख कर की गई हैं।

हमें आशा है कि इस रिपोर्ट में आयोग द्वारा की गई सिफारिशें कार्यान्वित की जाएंगी क्योंकि वे अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के निर्धन और अज्ञानी शिकार व्यक्तियों के लिए अत्यधिक लाभप्रद होंगी और यह हमारे नागरिकों के मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक प्रगामी कदम होगा।

सादर,

भवदीय
ह०-
(के० एन० सिंह)

माननीय श्री पी० वी० नरसिंहराव,
प्रधान मंत्री एवं
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली।

विषय सूची

		पृष्ठ सं०
अध्याय 1	भूमिका	1
अध्याय 2	अभिरक्षा में अपराध की निदर्शक परिस्थितियां . . .	4
अध्याय 3	संवैधानिक और कानूनी उपबंध	8
अध्याय 4	अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाएं	19
अध्याय 5	गिरफ्तारी	23
अध्याय 6	पुलिस थाने पर बुलाया जाना	34
अध्याय 7	चिकित्सीय परीक्षा	36
अध्याय 8	प्रथम इत्तिला रिपोर्ट	39
अध्याय 9	मृत्यु की दशा में जांच और मृत्यु समीक्षा . . .	42
अध्याय 10	अभियोजन के लिए मंजूरी	44
अध्याय 11	साक्ष्य विधि	47
अध्याय 12	प्रतिकर	51
अध्याय 13	पुलिस का संगठन	56
अध्याय 14	सिफारिशें	59

परिशिष्ट :

परिशिष्ट 1	अभिरक्षान्तर्गत अपराध संबंधी कार्य-पत्र . . .	66
परिशिष्ट 2	कार्य-पत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणी	77

अध्याय 1

भूमिका

1.1. हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने वाले अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बढ़ती हुए घटनाएं गंभीर चिन्ता का विषय है। सत्ता के दुरुपयोग, और किसी घटना के अन्वेषण के संबंध में पूछताछ के लिए पुलिस और अन्य विधि प्रवर्तनकारी अभिकरणों द्वारा संदिग्ध व्यक्तियों को यातना की शिकायतें बढ़ रही हैं। कुछ समय से ऐसी शिकायतों ने यातना, हमला, क्षति, उद्दापन, लैंगिक शोषण, और अभिरक्षा में मृत्यु की घटनाओं के बढ़ने के कारण खतरनाक बहु-आयामी रूप ले लिया है। अन्य अपराधों की तुलना में अभिरक्षान्तर्गत अपराध, विशेष रूप से जघन्य और वीभत्स हैं क्योंकि वे अरक्षित नागरिक के प्रति लोक सेवक द्वारा अभिरक्षान्तर्गत व्यवस्था के विश्वासघात को प्रतिबिम्बित करते हैं। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, विधि, मानव गरिमा और मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

1.2. व्यष्टि की स्वतंत्रता और उसके जीवन की रक्षा संबंधी संवैधानिक और कानूनी उपबंधों के बावजूद, अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की बढ़ती हुई घटनाएं समाज में अव्यवस्था बढ़ाने वाला उपादान बन गई है। लगभग प्रतिदिन ही प्रातः समाचार-पत्रों में पुलिस की अभिरक्षा में अमानवीय यातना, हमला और मृत्यु की रक्त-रंजित कहानियां पढ़ने को मिलना बहुत ही दुःखद है। अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की चौंका देने वाली बढ़ती हुई संख्या ने समाज के प्रत्येक वर्ग की चेतना को झकझोर डाला है और इससे जनता में, विधि प्रवर्तन अभिकरणों विशेष रूप से पुलिस तथा राजस्व और आसूचना प्रवर्तन निदेशालय के प्रति कड़ा विरोध पैदा कर दिया है।

उच्चतम न्यायालय ने, एक से अधिक अवसर पर अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की पुनरावृत्ति पर अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। न्यायालय ने पुलिस के उस सहायक निरीक्षक को, जिसे एक पुलिस अधिकारी के गृह में हुई चोरी के अपराध की पूछताछ के संबंध में पुलिस अभिरक्षा में एक व्यक्ति को उसकी मृत्यु पर्यन्त यातना देने के लिए नीचे के न्यायालयों द्वारा आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया था, अपील खारिज करते समय अपनी व्यथा और वेदना इन शब्दों में व्यक्त की थी, "हम पुलिस यातना की उस पैशाचिक पुनरावृत्ति से, जिसका परिणाम साधारण नागरिकों के मन में यह भयावह आतंक है कि उनका जीवन और उनकी स्वतंत्रता एक ऐसे नए संकट के अधीन हो गए हैं जब कि विधि के संरक्षक पुलिस हिरासत में,———मानव अधिकारों को मृत्यु के मुंह में झोंका जा रहा है, यदि समाचार-पत्रों की रिपोर्टें रंच मात्र विश्वास योग्य हैं तो अत्यधिक विक्षुब्ध हैं क्योंकि वे कष्टप्रद प्रकोष्ठ बनते जा रहे हैं। यह वृद्धि, हमारे मानव अधिकार, जागरूकता और मानवीय संवैधानिक व्यवस्था के लिए अनर्थकारी है।"[1]

1.3. अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बाबत कोई विश्वसनीय या प्रामाणिक सांख्यिकी उपलब्ध नहीं है क्योंकि यातना की अधिकतर घटनाएं अभिलिखित नहीं हैं। नगरीय क्षेत्रों में यातना और क्षति की घटनाएं जन संचार माध्यमों द्वारा जनता की जानकारी में लाई जाती हैं जब कि हमारे इस विशाल देश के ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली ऐसी घटनाओं की बहुत बड़ी संख्या की कोई जानकारी नहीं मिल पाती। परिस्थितियों की ऐसी स्थिति में, अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाओं की सही संख्या बतला पाना कठिन है। वर्ष 1993 के लिए ऐम्नेस्टी इंटरनेशनल रिपोर्ट के अनुसार 1983 से 1993 तक की अवधि के दौरान संपूर्ण भारत में अभिरक्षा में 415 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 1990 से 1993 तक के दौरान सारे देश में पुलिस अभिरक्षा में 289 बलात्संग और 274 मृत्यु के मामलों की रिपोर्ट की गई थी[2]। एक प्रमुख समाचार-पत्र में प्रकाशित रिपोर्ट से पता चलता है कि वर्ष 1990-1993 के दौरान अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु

---

1. रघुबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1980) 3 एस सी सी 17 ए आई आर 1980 एस सी 1087।

2. राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार का तारीख 15-6-1994 का पत्र संख्यांक 205/1/94-एस०टी०ए०टी०/एन०सी०आर०बी०।

की 265 घटनाएं[1] हुई थी। इन संख्याओं के सही होने की कोई गारंटी नहीं है, किन्तु यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाएं चौंका देने वाले ऐसे अनुपात में बढ़ गई है जो हमारी दांडिक न्याय की प्रणाली की विश्वसनीयता को प्रभावित कर रही हैं और जो राज्य की अपकीर्ति बढ़ा रही हैं।

1.4. अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की समस्या जन-संचार तथा हमारे देश के विभिन्न मंचों और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी परिचर्चा की विषय-वस्तु बन गई है। राष्ट्रीय और साथ ही अंतरराष्ट्रीय अभिकरणों ने अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की रिपोर्टों के परिणामस्वरूप मानव अधिकारों के अतिक्रमण के लिए हमारी प्रणाली की ओर संकेत किया है। सितंबर, 1992 में केन्द्रीय सरकार ने मानव अधिकारों के अतिक्रमण पर विचार-विमर्श किया गया था। सम्मेलन में हुई परिचर्चा में लिए गए विनिश्चय उपलब्ध नहीं हैं यद्यपि सम्मेलन के पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने मानव अधिकारों के अतिक्रमण को निपटाने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया था।

1.5. आमतौर पर, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों, यातना, क्षति या मृत्यु के शिकार समाज के कमजोर वर्गों के लोग होते हैं। निर्धन, पददलित और अज्ञानी, रंचमात्र या पूर्णतः राजनैतिक या आर्थिक शक्ति से हीन व्यक्ति अपने हितों के संरक्षण में असमर्थ हैं। समाज के समृद्ध सदस्य, सामान्यतः यातना के अध्यधीन नहीं होते हैं क्योंकि पुलिस उनके संसाधनों से भयभीत रहती है। ऐसे साधन सम्पन्न व्यक्ति तत्काल अपनी स्वतंत्रता पुनः पाने के लिए उच्चाधिकारियों तक और न्यायालयों में पहुंच जाते हैं। समाज के कमजोर या निर्धन वर्गों के सदस्य, अनौपचारिक रूप से गिरफ्तार किए जाते हैं और पुलिस अभिलेखों में ऐसी गिरफ्तारियों की प्रविष्टि किए बिना कई दिनों तक पुलिस अभिरक्षा में रखे जाते हैं। इस अनौपचारिक निरोध के दौरान उनको यातना दी जाती है जिसका परिणाम कभी-कभी मृत्यु होता है। अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में मृतक का शरीर, गुप्त रूप से विनष्ट किया जाता है या उसे सार्वजनिक स्थान पर, आत्महत्या या दुर्घटना का मामला बनाते हुए फैंक दिया जाता है। पुलिस कार्मिक को बचाने के लिए अभिलेखों में छलसाधन किया जाता है। शिकार व्यक्ति के नातेदार या मित्र, अपनी निर्धनता, अज्ञान और अशिक्षा के कारण विधि का संरक्षण पाने में असमर्थ होते हैं। किन्तु, भले ही कुछ स्वैच्छिक अभिकरण उनका मामला हाथ में लेते हों या त्रुटिकर्ता लोक अधिकारियों के विरुद्ध लोकहित मुकदमे संस्थित किए जाते हैं, उनके लिए कोई प्रभावी या त्वरित उपचार उपलब्ध नहीं है, परिणामस्वरूप त्रुटिकर्ता लोक अधिकारी, निरापद रह जाते हैं। यह स्थिति इस धारणा को जन्म देती है कि विधि का संरक्षण सम्पन्न वर्ग के लिए है, निर्धनों के लिए नहीं। यदि अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की घटनाएं नियंत्रित या विलोपित नहीं की जाती हैं तो संविधान, विधि तथा राज्य का लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं रह जाएगा जिससे अंततोगत्वा समाज को अस्त-व्यस्त कर देने वाली अराजकता फैल जाएगी। संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस ब्रैंडीज के अनुसार सरकार "एक शक्ति-सम्पन्न और सर्वव्यापी शिक्षक है (जो) सभी लोगों को अपना उदाहरण देकर शिक्षा प्रदान करती है।" यदि सरकार ही कानून तोड़ने वाली बन जाती है, तो वह विधि की अवमानना को जन्म देती है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने-आप में विधि बन जाने के लिए आमंत्रित करती है।" किसी भी सभ्य समाज में ऐसी स्थिति की विधिमान्यता को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

1.6. विधि और व्यवस्था बनाए रखना, किसी भी सरकार के लिए प्राथमिक महत्व की बात है। अपराध का अन्वेषण और अपराधी का पकड़ा जाना, शांति और व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए, अत्यन्त आवश्यक है। विधियों के कार्यान्वयन और विधि-व्यवस्था बनाए रखने के लिए, पुलिस और अन्य विधि प्रवर्तनकारी अभिकरण आवश्यक हैं, किंतु कोई भी सभ्य देश, किसी अपराध की पूछताछ और उसके अन्वेषण के दौरान, यातना और उत्पीड़न के प्रयोग की अनुज्ञा नहीं दे सकता है। पुलिस और अन्य सरकारी अभिकरणों से विधि को प्रवर्तित कराने में यह अपेक्षित है कि वे व्यष्टि के मूल अधिकारों के प्रति संवैधानिक प्रतिबद्धता का सम्मान करें। कानूनी विधियां, जिनके अन्तर्गत दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम हैं, संदिग्ध या किसी अभियुक्त के हित की सुरक्षा के लिए प्रक्रिया का उपबंध करते हैं। किन्तु वास्तविक व्यवहार में उन उपबन्धों का अतिक्रमण किया जाता है। विद्यमान विधि, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में कार्रवाई करने के लिए अपर्याप्त और प्रभावहीन है और उनके मामलों में, त्रुटिकर्ता अधिकारी, परिवादकर्ता को उनके विरुद्ध मामला साबित कर पाने में असमर्थता के कारण, दंड पाने से बच जाते हैं। उच्चतम न्यायालय ने भारत में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर कार्रवाई करने से संबंधित अपर्याप्त कानूनी उपबंधों पर प्रतिकूलतः टिप्पणी की है और न्यायालय ने विद्यमान विधियों में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिए हैं।

---

1. डी॰पी॰साहा, "इुवर्ड्स बेटर पुलिस-पब्लिक रिपोर्ट" दि हिन्दू, मई 17, 1994, पृ॰ 17।

1.7. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्ति साधारणतया समाज के कमजोर वर्गों के होते हैं, निर्धन कुटुंब के उपार्जक सदस्य की अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में, मृतक के कुटुंब के सदस्यों को दरिद्रता में कारुणिक जीवन बिताना पड़ता है। सरकार द्वारा अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु की जांच करने के लिए नियुक्त किए गए अनेक जांच आयोगों ने, मृतक के कुटुंब के सदस्यों को राहत और उनके पुनर्वास का उपबंध करने के लिए[1] विधि में संशोधन की सिफारिश की है। उच्चतम न्यायालय और अन्य न्यायालयों ने भी राज्य को, प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को नुकसानी का संदाय करने के लिए निर्देश दिए हैं। राज्य कृत्यकारी, जिनमें मुख्य मंत्री और गृह मंत्री भी हैं, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्तियों के प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को अनुग्रहपूर्वक संदाय मंजूर करते रहे हैं, किन्तु विद्यमान विधि प्रभावित कुटुंब के सदस्यों को प्रतिकर या नुकसानी की मंजूरी के लिए पर्याप्ततः उपबंध नहीं करती है। अंतरिम राहत मंजूर करने के लिए भी कोई उपबंध नहीं है। निःसन्देह, नुकसानी के लिए राहत का दावा, सिविल वाद के माध्यम से अपकृत्य विधि में किया जा सकता है किन्तु इस संबंध में विधिक स्थिति अस्पष्ट है और सिविल वाद की प्रक्रिया अत्यन्त बोझिल है, जो इसे भ्रामक बना देती है।

1.8. विधि आयोग को, उन विधियों की, जो निर्धनों पर प्रभाव डालती हैं, जांच करने का और ऐसे उपायों का, जो निर्धन की सेवा में विधि और विधिक प्रक्रिया को लागू करने के लिए आवश्यक हों, न्यायिक प्रशासन प्रणाली को यह सुनिश्चित करने के लिए पुनरीक्षणाधीन रखते हुए, कि न्यायिक प्रशासन प्रणाली, राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में समाज की मांगों के प्रति संवेदनशील रहे, सुझाव देने का कार्य सौंपा गया था। यद्यपि सरकार ने, अध्ययनाधीन विषय पर विधि आयोग को कोई निर्देश नहीं किया था। फिर भी आयोग ने गहन अध्ययन के लिए यह विषय, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्तियों को जो हमारे समाज के प्रायः कमजोर वर्गों के होते हैं, राहत प्रदान करने की दृष्टि से अपने हाथ में लिया है। अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की आवृत्ति को कम करने और शिकार व्यक्तियों तथा उनके आश्रितों की राहत का उपबंध करने के लिए मौलिक और प्रक्रियात्मक दोनों प्रकार की विधियों का संशोधन करने की जनता द्वारा मांग की जाती रही है, इसीलिए यह अध्ययन किया गया है। आयोग इस तथ्य से परिचित है कि विधि प्रवर्तक अभिकरणों द्वारा शक्ति का दुरुपयोग सफलतापूर्वक समूल रोका नहीं जा सकता, क्योंकि विधि का पालन, विधि प्रवर्तक अभिकरणों की सामाजिक चेतना, मानव अधिकारों के प्रति तथा व्यष्टि के स्वातंत्र्य और उसकी स्वतंत्रता के प्रति उनकी जागरूकता पर निर्भर करता है। अभिरक्षा में यातना के अवसर समाप्त करने के लिए विधि कड़ी बनाई जानी चाहिए और तब भी यदि इसे समूल समाप्त कर पाना संभव न हो सके तो कम से कम अधिकतम संभव सीमा तक इन्हें न्यूनतम करने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। आयोग ने, पूर्वोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर यह कार्य आरंभ किया है।

1.9. इस विषय पर लोकमत को प्रकाश में लाने के लिए, आयोग ने अध्ययनाधीन विषय के विभिन्न पहलुओं को घोषित करते हुए, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर एक कार्य-पत्र परिचालित किया था। कार्यपत्र[2] में, विधि आयोग ने अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर दस मुद्दे तैयार किए थे और मौलिक तथा प्रक्रियात्मक विधि के संशोधन की अनंतिम प्रस्थापनाओं पर अभिमत आमंत्रित किए थे। कार्यपत्र, सभी राज्य सरकारों, राज्य पुलिस और अर्द्ध-सैन्य बलों के सभी महानिदेशकों और गृह मंत्रालय तथा केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो, और उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय न्यायाधीशों, मानव अधिकार अभिकरणों, अधिवक्ताओं और अन्य व्यक्तियों को भी भेजा गया था। कार्यपत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणी का सार परिशिष्ट 2 में दिया गया है। आयोग ने, "दांडिक न्याय का प्रशासन, उसकी समस्याएं और परिप्रेक्ष्य" पर नई दिल्ली में अखिल भारतीय सेमिनार भी आयोजित किया था। इस सेमिनार में न्यायाधीशों, न्यायशास्त्रियों, अधिवक्ताओं, विधि प्राचार्यों ने दांडिक न्याय के विभिन्न पहलुओं पर अपने-अपने विचार व्यक्त किए थे। "अभिरक्षान्तर्गत अपराध" विचार-विमर्श के लिए विषयों में से एक विषय था जिस पर जीवन्त वाद-विवाद हुआ था। आयोग ने, यह रिपोर्ट तैयार करते समय, सेमिनार में व्यक्त किए गए अभिमतों पर भी विचार किया है।

---

1. संजीव रेड्डी नगर पुलिस स्टेशन पर पुलिस अभिरक्षा में श्री यू॰ नर सिंहा की 10-7-1986 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, 28, आंध्र प्रदेश सरकार (1986)।
   वी॰ टाउन पुलिस स्टेशन, विजयवाड़ा पर श्री टी॰ मुरलीधरन की 17-9-1986 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, (आन्ध्र प्रदेश सरकार 1987)।
   येलेश्वरम आउटपोस्ट पर दादुगुला संकुरिया की 26-8-1985 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट (आंध्र प्रदेश सरकार 1986)।
   धुंगधुरधी पर, पुलिस अभिरक्षा में श्री माकेला अजियाह की 6-9-1986 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट (आंध्र प्रदेश सरकार)।
2. परिशिष्ट 1 देखिए।

अध्याय 2

अभिरक्षा में अपराध की निदर्शक परिस्थितियां

2.1 गिरफ्तारी और उसका महत्व

किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी, अभिरक्षा की ओर ले जाती है, जो अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किए जाने के लिए संभाव्य अवसर प्रदान करती है। किसी गिरफ्तार या निरुद्ध व्यक्ति के प्रति जब वह अभिरक्षा में है, किसी लोक सेवक द्वारा अपराध का किया जाना, अभिरक्षान्तर्गत अपराध होता है। अभिरक्षान्तर्गत अपराध, अपराध के पूर्व गिरफ्तारी या निरोध होता है। साधारण रूप में "अभिरक्षा" किसी व्यक्ति के गिरफ्तार किए जाने से प्रारंभ होती है, गिरफ्तारी वैध या अवैध हो सकती है, वह औपचारिक या अनौपचारिक हो सकती है; यह शब्द द्वारा या कृत्य द्वारा हो सकती है।[1-6] गिरफ्तारी के कृत्य का कोई भी उद्भव या प्रवर्ग क्यों न हो, उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम होता है; यह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित कर देती है। उस क्षण से आगे, वह पूर्णतः उसको गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति के नियंत्रणाधीन है। उसकी गतिविधि, उसका स्वातंत्र्य, उसके कृत्य, और उसका चिंतन भी, अन्य व्यक्ति के अनन्य नियंत्रण और स्वामित्व के अधीन आ जाता है। उसका व्यक्तित्व, उस व्यक्ति के अधीनस्थ हो जाता है जिसकी अभिरक्षा में वह रखा गया है। प्रत्येक गिरफ्तारी अभिरक्षा की कोटि में आती है। गिरफ्तारी और अभिरक्षा पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। कतिपय परिस्थितियों में अभिरक्षा, गिरफ्तारी की कोटि में आ सकती है, किन्तु सभी परिस्थितियों में नहीं।[7] गिरफ्तारी, किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने की औपचारिक पद्धति है, किन्तु कोई व्यक्ति, अन्य प्रकारों से भी अभिरक्षा में हो सकता है। सामान्यतः किसी व्यक्ति के निरोध के संबंध में "अभिरक्षा" शब्द से उसकी इच्छाशक्ति के अनुसार चलने फिरने के स्वातंत्र्य से इंकार कर सम्बद्ध व्यक्ति के चलने फिरने पर अवरोध विवक्षित है। इस प्रकार, गिरफ्तारी के पश्चात् कोई व्यक्ति औपचारिक या अनौपचारिक रूप से संबद्ध प्राधिकारी की अभिरक्षा में होता है।

2.2 स्वामित्व की स्थिति और प्राधिकार का दुरुपयोग

स्वामित्व, अधिशासन और समग्र नियंत्रण की यही स्थिति, दुरुपयोग की संभावना की जन्मदात्री है, यदि राजनैतिक क्षेत्र में, "सत्ता भ्रष्ट बनाती है", तो यह कहना समानरूपेण सही है कि प्राधिकारी की स्थिति प्राधिकार का दुरुपयोग कराती है। ऐसा दुरुपयोग अनेक प्रकार के रूप ले सकता है। यह शारीरिक यातना, मानसिक क्रूरता, शान्त मनो-अधिशासन या दुरुपयोग का कोई भी रूप हो सकता है। अभिरक्षान्तर्गत यातना और अपराध के उतने ही अनन्त रूप हो सकते हैं जितने मानव विकृति के हैं।

स्थिति, वस्तुतः विलक्षण है। एक व्यक्ति, अन्य व्यक्ति के संपूर्ण अधिशासन के अधीन आ जाता है और वह दूसरा व्यक्ति (इस प्रकार अधिशासन में रखा गया) किसी इतर व्यक्ति के ठोस और तात्कालिक पर्यवेक्षण या परिवीक्षण के (सामान्यतः) अध्यधीन नहीं है।

2.3 विधि की भूमिका

निःसंदेह, ऐसा पर्यवेक्षण और परिवीक्षण, विधि द्वारा किया जा सकता है और वस्तुतः, एक ऐसे साधित्र का सृजन और अनुरक्षण विधि के अनिवार्य कृत्यों में से एक है जो विशिष्टतः अतिसंवेदनशीलता की

1. पुलिस अभिरक्षा में क्षति संबंधी विधि आयोग की 113वीं रिपोर्ट .
2. उत्तम चंद बनाम महमूद जेवा, ए० आई० आर० 1936, नागपुर, 200 .
3. छोटे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1954, इलाहाबाद, 667 .
4. सुब्बिया चेट्टियार बनाम गनेशन, ए० आई० आर० 1960, मद्रास, 91 .
5. परमहंस जादव बनाम उड़ीसा राज्य, ए० आई० आर० 1994, उड़ीसा, 144 .
6. जोधा घोड़ा रावरी बनाम गुजरात राज्य, 1992 क्रि० ला० रि० 3298 .
7. प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन और अन्य, जे० टी० 1994 (1) एस० सी० 299, 306 .

स्थितियों में अन्यायपूर्ण आचरण, अत्याचार, दुरुपयोग और भ्रष्टाचार के विरुद्ध निरोधक तत्व के रूप में कृत्य करेगा। जहां पर स्थिति प्रलोभन की है, वहां विधि, लोभ के व्यसन पर एक अवरोध (ब्रेक) के रूप में कार्य करेगी। जहां स्थिति वासना की है, वहां अपनी शास्तियों द्वारा, वासना की लालसा को नियंत्रित करती है। जहां स्थिति, शोषण या अन्यायपूर्ण आचरण की है, वहां पर विधि को दुष्ट के अभ्याघात को रोकने के लिए एक रोध के रूप में कृत्य करना होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में विधि को अपनी अदृश्य किन्तु सार्वभौम प्रभाव वाली भूमिका निभानी पड़ती है। और इसी कारण से विधि को उस खामी को दूर करने के लिए प्रयास करना चाहिए जिसे स्थिति की विलक्षणता जन्म दे।

कहने का आशय यह नहीं है कि एक अच्छी विधि पारित करना, अपने आप में सभी बुराइयों को ठीक करने के लिए पर्याप्त है। अच्छा विधान आरंभ मात्र है, किन्तु यही शुभारंभ है। गिरफ्तारी (जिससे यह पैरा सबद्ध है) के संदर्भ में विधिक फ्रेमवर्क ऐसा होना चाहिए कि वह निरोधक प्रभाव की आपूर्ति कर सके जो मानव प्रकृति की कमजोरियों के कारण आवश्यक हो। इसका तात्पर्य (अन्य बातों से अलग) यह है कि "गिरफ्तारी से संबंधित विधि" को ही अनवरत पुनर्विलोकन के अधीन होना चाहिए। "गिरफ्तारी से संबंधित विधि" में, निरपवादतः हमें निम्नलिखित को शामिल करना होगा, (i) वे कानूनी उपबंध जो गिरफ्तार करने की शक्ति प्रदान करते हैं; (ii) व्यक्तियों के वे प्रकार जो गिरफ्तार करने के लिए सशक्त हैं; (iii) गिरफ्तारी और निरोध के संबंध में विधि में उपबंधित रक्षोपाय, और (iv) संबद्ध विषय, जिसमें विशिष्टतया वे व्यक्तिपरक और वस्तुपरक उपादान भी हैं जिनका गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग किया जा सके, उसके पूर्व विद्यमान होना आवश्यक है। इन सभी पर विचार किया जाना आवश्यक है और हम समुचित स्थान पर उनकी चर्चा करेंगे।

2.4 पुलिस से भिन्न अधिकारी

इस प्रक्रम पर, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि गिरफ्तार करने की शक्ति केवल पुलिस अधिकारियों को ही नहीं दी गई है। हमारे कानूनी फ्रेमवर्क में, यह शक्ति, अनेक अन्य अधिकारियों को भी प्रदत्त की गई है। तकनीकी दृष्टिकोण चाहे जो भी हो, वे भी, सारतः पुलिस अधिकारियों के समान, प्राधिकारवान व्यक्ति हैं। संभव है कि इस रिपोर्ट के आगे वाले पैराओं में संक्षिप्तता और सुविधा के लिए, "पुलिस अधिकारी" और पुलिस पदों का प्रयोग हो। किन्तु (जब तक कि संदर्भ की अन्यथा मांग न हो) यह परिचर्चा, यथावश्यक परिवर्तन सहित, पुलिस अधिकारियों से भिन्न उन अधिकारियों को भी लागू होगी जिन्हें विधि प्रवर्तन का कर्तव्य सौंपा गया है और जिन्हें गिरफ्तार करने की और व्यक्तियों को अभिरक्षा में रखने की शक्ति प्राप्त है।

2.5 दांडिक प्रक्रिया आरंभ करना

यदि, दुर्भाग्यवश, अभिरक्षा में यातना या अन्य अपराध की घटना होती है तो दांडिक प्रक्रिया का अवलंब लेना स्पष्टतः आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः भारत में दांडिक प्रक्रिया का आरंभ, पुलिस में सूचना प्रस्तुत करने या सक्षम मजिस्ट्रेट को शिकायत करने का रूप लेता है। पुलिस में सूचना प्रस्तुत करना, बहुधा अपनाया जाने वाला क्रम है। तथापि जहां कोई अपराध करने के लिए अभिकथित व्यक्ति स्वयं विधि के प्रवर्तन से संबद्ध अधिकारी है, वहां यह सदैव अधिक प्रभावशाली साबित नहीं हो सकता है। स्थिति का यही वह तत्व है जो नकारात्मक रूप से वह उपादान बन जाता है जो अत्याचारों को सुकर बनाता है।

2.6 चिकित्सीय परीक्षा

अभिरक्षा रखने वाले किसी अधिकारी द्वारा हिंसा के अपराधकर्म के बारे में अभिकथनों को, किसी ठोस साक्ष्य द्वारा साबित करना होता है। ऐसे मामलों में, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का परिसाक्ष्य बहुत ही विरलतः उपलब्ध होगा। किन्तु साधारणतः, चिकित्सीय साक्ष्य इस निमित्त अतिसमाधानप्रद सामग्री होगी, परन्तु यह तब जब कि वह उपलब्ध हो। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसा साक्ष्य उपलब्ध हो, अभिरक्षान्तर्गत हिंसा के अभिकथित शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय जांच, सर्वोत्तम युक्ति हो सकेगी। यह अन्य बातों के साथ-साथ, अभिधारणा है कि ऐसी जांच के लिए विधि में पर्याप्त रूप से उपबंध किया जाए। अतः इस पहलू पर, समुचित स्थान पर, विशेष ध्यान दिया जाएगा।

2.7 मृत्यु समीक्षा, अन्वेषण और जांच

जहां अभिरक्षान्तर्गत हिंसा का परिणाम शिकार व्यक्ति की मृत्यु है, स्पष्टतः, मौलिक विधि असफल हो जाती है। किन्तु प्रक्रियात्मक विधि का अधिकार में आना आवश्यक है ताकि मृत्यु का तथ्य, मृत्यु के कारण, मृत्यु की रीति और अन्य सुसंगत तथ्य अभिनिश्चित हो सकें। यथासंभव, ऐसे तथ्यों का अभिनिश्चय,

(क) उसके समय के बारे में शीघ्र हो,

(ख) उसके आवेष्टन में पर्याप्त हो,

(ग) उसकी पद्धति विज्ञान में समग्र हो, और

(घ) उसके अभिगम में निष्पक्ष हो।

वह अभीष्ट, जिसका हमने ऊपर की परिगणना के अंतिम स्थान पर उल्लेख किया है, निःसन्देह सर्वोच्च महत्व का है। इसी अभीष्ट के संबंध में वर्तमान स्थिति, समाधानप्रद नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि कानूनी विधि, विशिष्टतः दंड प्रक्रिया संहिता में इस विषय पर कुछ उपबंध हैं किंतु अनुभव से यह उपदर्शित होता प्रतीत होता है कि उसमें इस निमित्त तीन प्रमुख खराबियां हैं। पहले स्थान पर यह है कि कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा यद्यपि मृत्यु समीक्षा, संप्रति आज्ञापक है, ऐसे मामले अज्ञात नहीं जहां पुलिस अधिकारी भी जांच से जुड़े हुए हैं इस प्रकार मजिस्ट्रेट जांच के लिए उपबंध का मूल उद्देश्य ही पराभूत हो जाता है। दूसरा यह कि पुलिस या मजिस्ट्रेटों की कोई आलोचना किए बिना, इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि ये मृत्यु समीक्षाएं सदैव लोक विश्वास को बढ़ावा नहीं दे पाती हैं। यह जांच आयोगों की नियुक्ति के लिए लगातार मांगों से सुव्यक्त है, जो जब कभी अभिरक्षान्तर्गत यातना, बलात्संग या मृत्यु होती है, तब नियुक्त भी किए जाते हैं। अतिरिक्ततः, यह मानते हुए कि किसी कार्यपालक दृष्टिकोण से जो भी सोचा जा सकता है उनमें सर्वश्रेष्ठ है, कठिनाई यह है कि ऐसी मृत्यु समीक्षाओं का परिणाम सदैव यह नहीं होता कि उनके विरुद्ध जो दोषी हो सकते हैं, समुचित दांडिक कार्यवाहियां संस्थित की जा सकें।

2.8 साक्ष्य की बाबत कमियां : सबूत की कठिनाई

अब हम, साक्ष्य के क्षेत्र में उठने वाली कतिपय व्यावहारिक समस्याओं पर विचार कर लें। अपनी प्रकृति से ही वह अपराध, जो उस समय होता है जब कि शिकार व्यक्ति अभिरक्षा में है, साबित कर पाना अत्यन्त कठिन है। पहली बात यह (जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है) कि स्थिति ऐसी होती है कि शिकार व्यक्ति पूर्णतः अपराध के अधिकथित कर्ता का वशवर्ती है। इसलिए शिकार व्यक्ति उसके बारे में बताने से भयभीत होगा। दूसरे, स्थिति ऐसी है कि कोई भी ऐसा इतर व्यक्ति सामान्यतः उपस्थित नहीं रह सकता, जो मौलिक परिसाक्ष्य दे सके। यहां तक कि जहां यह संभाव्यता है कि अभिरक्षान्तर्गत हिंसा की गई थी, उस घटना को अभिरक्षा के साथ जोड़ पाना और न्यायालय के समाधानप्रद रूप में यह स्थापित कर पाना कठिन है कि (i) प्रश्नगत अपराध किया गया था; और (ii) अपराध, अभिरक्षक द्वारा किया गया था।

2.9 प्रकटीकरण संबंधी बयानों के लिए मजबूर करने में बल का प्रयोग करना

पूर्ववर्ती पैरा में, उठाए गए प्रश्न से पृथक्, साक्ष्य विधि से संबंधित एक अन्य विषय भी है, जिसके बारे में हमारा विश्वास है कि अभी भी उसका अत्यधिक व्यावहारिक महत्व है। इस समस्या की जड़ें, साक्ष्य अधिनियम में अन्तर्विष्ट एक अत्यधिक विलक्षण उपबंध, अर्थात् धारा 27 में है। अधिनियम की योजना में, किसी व्यक्ति द्वारा, पुलिस अभिरक्षा में की गई संस्वीकृति, ग्राह्य नहीं है। परंतुक के रूप में, धारा 27 में यह अधिकथित है कि यदि कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी तथ्य को प्रकट करने के बारे में कोई कथन करता है तो वह ग्राह्य होगा, चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आता हो या नहीं। इस धारा की स्थिति और असंगत भाषा के द्वारा भिन्न-भिन्न व्याकरणिक समस्याएं और भाषा संबंधी अस्पष्टताएं उत्पन्न हो गई हैं। हमारा वर्तमान चिन्तन, और तात्विक विषयों से सम्बद्ध है। यह तथ्य कि किसी कथन को ग्राह्य माना जा सकता है यदि यह विचारण न्यायालय द्वारा "प्रकटीकरण कथन" में निर्दिशित है और प्रकटीकरण कथन के रूप में चिह्नित संस्वीकृति के रूप में विचारण में प्रस्तुत किया गया है, यह तथ्य जो प्रत्येक पुलिस अधिकारी को सुज्ञात है, ऐसा कथन उपाप्त करने के लिए अनुचित साधन के प्रयोगार्थ पुलिस अधिकारी के लिए एक लीवर के रूप में कार्य करता है। पुलिस को यह ज्ञात है कि व्यावहारिक बुद्धिमत्ता, पीढ़ियों के अनुभव और गहन चिन्तन पर आधारित प्रतिषेधों का निवारण करने की यह आसान पद्धति है। ऐसा कहना

रुचिकर नहीं है, किन्तु कहना आवश्यक है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27, इस अर्थ में अत्यधिक रिष्टियों की उत्पादक रही है कि संस्वीकृति के उद्ग्रहण के लिए एक ललक पैदा कर देती है, जो, अपनी बारी में, प्रपीड़न की सूक्ष्म पद्धतियों का अवलंब लेने की ओर अग्रसर कराती है। संगत स्थान पर हम इस धारा के संबंध में समुचित विधायी कार्रवाई के लिए सुझाव देंगे। इस समय, तो हमें इतना ही कहना है कि यदि ईमानदारी से विधि प्रवर्तन के मामले को प्रोन्नत किया जाना है, तो इस धारा की कठोर शल्य क्रिया करना आवश्यक होगा।

2.10 पुलिस का संगठन

ईमानदार और दक्ष विधि प्रवर्तन की विषय वस्तु पर विचार करते समय हमें पुलिस के संगठन से संबंधित एक महत्वपूर्ण पहलू का भी उल्लेख करना आवश्यक लगता है। कुल मिला कर, भारत में पुलिस का संगठन इस प्रकार का है कि अन्वेषण के कृत्य और विधि व्यवस्था के अनुरक्षण के कृत्य के बीच कोई कठोर विभाजक रेखा नहीं खींची गई है। अन्वेषण के लिए धैर्य, कौशल, दीर्घकालीन प्रयास और उच्च स्तर की विशेषज्ञता अपेक्षित है। विधि और व्यवस्था के अनुरक्षण में स्थल पर अति त्वरित कार्रवाई तत्काल अनुक्रिया की मनः शक्ति, चित्त की दृढ़ता और विनिश्चायक अभिगम पर विचार करना पड़ता है। अन्वेषण में लगे अधिकारी को तथ्यों का संग्रह, वास्तविकता की खोज, गत की पुनः संरचना तथा सामग्री के संपूर्ण सप्तक का विश्लेषण करना पड़ता है। विधि और व्यवस्था, सुरक्षा और वैसे ही अन्य विषयों से सम्बद्ध कर्तव्यों के निर्वाह में लगे अधिकारी को, दूसरी ओर, क्षणभर में वास्तविकता को समझना तथा तात्कालिक और प्रभावशाली अनुक्रिया प्रदर्शित करना पड़ता है। यदि किसी पुलिस अधिकारी को, समय-समय पर, आपात कर्तव्यों के लिए इधर-उधर भेजा जाता है तो उससे अन्वेषण के निर्धारित पथ को अपनाने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती है, और वह कम वांछनीय पद्धतियों को अपनाने के लिए ललायित हो सकता है। उसके प्रपीड़न की ललक में परिणत हो जाने की पूर्ण संभावना है। पुलिस संगठन से उत्पन्न होने वाले अनेक अन्य उपादान हैं जो प्रपीड़क पद्धतियों के अंगीकरण में योगदायी हैं। हम इस रिपोर्ट के परवर्ती अध्याय में उन पर कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

अध्याय 3

संवैधानिक और कानूनी उपबंध

3.1 प्रस्तावना

भारत के संवैधानिक और कानूनी, दोनों ही प्रकार के विधिक ढांचे में अभिरक्षान्तर्गत यातना और अभिरक्षा में अन्य अपराधों से संबंधित उपबंध अंतर्विष्ट हैं। मौलिक विधि (भारतीय दंड संहिता) में अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के शरीर पर क्षति, यातना या मृत्यु कारित करने के लिए दंड का उपबंध है। प्रक्रियात्मक विधि (दंड प्रक्रिया संहिता और साक्ष्य अधिनियम) में अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के मूल अधिकार और हित की सुरक्षा के लिए अनेक उपबंध अंतर्विष्ट हैं। इस विषय पर संवैधानिक और सुसंगत कानूनी उपबंधों को महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णयों द्वारा पूरा किया गया है।

3.2 संवैधानिक उपबंध : अनुच्छेद 20

संविधान के अनुच्छेद 20 द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध, दांडिक प्रक्रिया से सीधे संगत हैं। अनुच्छेद 20(1) दंड विधान के भूतलक्षी प्रवर्तन का प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद 20(2) एक ही अपराध के लिए दोहरे संकट से रक्षा करता है। अनुच्छेद 20(3) में यह उपबंध है कि किसी अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। ये तीनों खंड तीन विभिन्न विषयों या पहलुओं से संबंधित प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु इन सभी में एक अंतर्निहित सामान्य तथ्य अर्थात् यह सुनिश्चित करने की चिन्ता विद्यमान है कि दांडिक न्याय प्रणाली के विभिन्न पहलुओं मौलिक, प्रक्रियात्मक और साक्ष्यिक का प्रयोग अभियुक्त व्यक्ति को सताने के लिए नहीं किया जाएगा। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सामान्य प्रतिपाद्य यह है कि दांडिक न्याय प्रणाली का प्रशासन इस प्रकार डिजाइन या कार्यान्वित नहीं किया जाना चाहिए जिससे न्याय के ही महत्व और नैतिक मूल्य विनष्ट हो जाएं।

निःसंदेह, अनुच्छेद 20(3) सबसे अधिक प्रत्यक्षतः सुसंगत है। संविधान और विधि, परिसाक्ष्यिक अनिवार्यता के विरुद्ध इस आधार पर संरक्षण करते हैं कि ऐसी अनिवार्यता अभियुक्त पर सूक्ष्म प्रपीड़न के रूप में कार्य कर सकती है।[1] यह ऐसा मूल्य है जिसे मूल अधिकार की प्रास्थिति दी गई है किन्तु जो अनेक कानूनी उपबंधों, विशिष्टतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 से धारा 26 तक, (ऐसा पक्ष जिसकी प्रायः उपेक्षा की जाती है) का अंतर्निहित प्रतिपाद्य भी है। अनुच्छेद 20(3) जैसे ही औपचारिक अभियोग किया जाता है, किसी अभियोजन के प्रारंभ के पूर्व या उसकी विचाराधीनता के दौरान,[2] प्रवर्तन में आ जाता है।

3.3 अनुच्छेद 21

संविधान के अनुच्छेद 21 में यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" शब्दों का व्यापक निर्वचन किए जाने के कारण, इस अनुच्छेद के अंतर्गत अनेक प्रकार के सरकारी कृत्य, जिनका दैहिक स्वतंत्रता पर प्रभाव है, आ जाते हैं। इस अनुच्छेद पर निर्णय जन्य विधि इतनी अधिक जटिल है कि कोई भी व्यक्ति अति गहन अध्ययन किए बिना, इस अनुच्छेद के समग्र विस्तार को नहीं समझ सकता और कोई भी दीर्घ परिचर्चा के बिना इसके साथ पूरी तरह न्याय नहीं कर सकता। किन्तु, संप्रति हमारा कार्य-क्षेत्र, अभिरक्षान्तर्गत अपराध के संबंध में अनुच्छेद 21 सुसंगतता की ओर ध्यान आकर्षित कराने तक ही परिसीमित है। अनुच्छेद 21 में यातना या अभिरक्षान्तर्गत अपराध के विरुद्ध कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है, फिर भी अनुच्छेद में आने वाले "प्राण या दैहिक स्वतंत्रता" अभिव्यक्ति का

1. स्मिथ बनाम ग्राहरेवदर, सोरियस फ्राड आफिसर, (1992) 3 आल० ई० आर० 456, 463, लार्ड मस्टिल्स का निर्णय।
2. बस्तगीर बनाम मद्रास राज्य ए० आई० आर० 1960 ए० सी० 1859।
1978 एस० सी० 1025 पैरा 30; बालकिशन बनाम राज्य, ए०आई०आर० 1981 एस० सी० 279.

निर्वचन, गिरफ्तारी के अधीन या अभिरक्षा के अधीन किसी व्यक्ति को यातना, हमला या क्षति के विरुद्ध संवैधानिक गारंटी को शामिल करते हुए किया गया है। दृष्टांत स्वरूप कुछ विनिश्चय निम्नलिखित हैं :

(i) ऐसा दंड, जिसमें यातना का तत्व है, असंवैधानिक है।[1]

(ii) कारावास के निर्बंधन, जो यातना, दबाव या अधिरोपण के तुल्य है तथा न्यायालय का आदेश जितना प्राधिकृत करता है उससे परे जाना, असंवैधानिक है।[2]

(iii) किसी विचारणाधीन या सिद्धदोष बंदी को ऐसे शारीरिक या मानसिक अवरोध के अध्यधीन नहीं किया जा सकता, जो—

(क) न्यायालय द्वारा दिए गए दंड द्वारा अधिदिष्ट नहीं है, या

(ख) बंदी के अनुशासन की अपेक्षा से अधिक है, या

(ग) मानव तिरस्कार के तुल्य है।[3]

3.4 अनुच्छेद 22

संविधान के अनुच्छेद 22(1) और 22(2) भी वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं क्योंकि उनके उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि गिरफ्तारी और निरोध की शक्ति के दुरुपयोग के निवारण के लिए विधि में कतिपय जांच विद्यमान हैं। अनुच्छेद 22(1) में यह उपबंध है कि किसी व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा या अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने और प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा।

अनुच्छेद 22(2) में यह उपबंध है कि प्रत्येक व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध रखा गया है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर ऐसी गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा।

ऊपर निर्दिष्ट दोनों उपबंध, वर्तमान रिपोर्ट की विषय वस्तु के लिए व्यापक महत्व रखते हैं। अधिवक्ता से परामर्श करने का अधिकार निरुद्ध व्यक्ति को अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित के लिए समर्थ बनाने के लिए आशयित है,—

(क) निर्मुक्ति सुनिश्चित करने के लिए, यदि गिरफ्तारी पूर्णतः अवैध है,

(ख) जमानत का आवेदन करने के लिए, यदि परिस्थितियों से ऐसा समर्थित है,

(ग) उसकी प्रतिरक्षा तैयार करने के लिए, और

(घ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि जब वह अभिरक्षा में है तब उस पर कोई अवैधता नहीं की जाती है।

अनुच्छेद 22(2) के अधीन मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने का अधिकार, अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने के लिए आशयित है कि :-

(i) निरोध की वैधता की एक स्वतंत्र छानबीन हो जाएगी,

(ii) जमानत पर निर्मुक्ति पाने के लिए एक उचित और प्रभावी अवसर प्राप्त होगा,

1. इन्दरजीत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1867.
2. शीला बार्से बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1983 एस०सी० 378; जावेद बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1985 एस० सी० 231.
3. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, ए० आई० आर० 1978 स० सी० 1675; सीताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 745; सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1779 पैरा 31, 42; जावेद बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1985 एस० सी० 231, पैरा 4; शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए० आई० आर० 1983, एस० सी० 465 पैरा 11.

(iii) एक ऐसा मार्ग उपलब्ध होगा जहां विरुद्ध व्यक्ति, अपनी व्यथा, जो अभिरक्षा में उसके साथ किए गए व्यवहार के लिए उसको हो सकेगी, प्रकाश में ला सकेगा।

अनुच्छेद 22 (1) और 22 (2) के उपबंधों के बीच आवश्यक संबंध को महसूस करते हुए, न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 22 के खंड (1) और (2) आज्ञापक हैं।[1]

3.5 भारतीय दंड संहिता : साधारण स्कीम

देश की साधारण दांडिक विधि को समाविष्ट करने वाली एक अधिनियमिति के रूप में भारतीय दंड संहिता ऐसे आचरण के विरुद्ध दांडिक शास्तियों का सृजन करने की जरूरत के परे ध्यान देने का लोप नहीं करती जो किसी अन्य व्यक्ति को किसी ऐसे कृत्य के माध्यम से, जो दंडनीय होना चाहिए, अपहानि करता है। इस बात पर जोर दिए जाने की आवश्यकता है कि संहिता, अमूर्त हानि की भी इतनी सूचना देती है, जितनी मूर्त हानि की। संहिता की धारा 44 की परिभाषा, जो "क्षति" पद को परिभाषित करती है शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की अपहानि को समाविष्ट करती है।

संहिता के उपबंध, जो वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं, दो प्रवर्गों के अंतर्गत आते हैं–

(i) वे उपबंध, जो अपहानियों के विनिर्दिष्ट प्रकारों के विरुद्ध व्यक्तियों के सभी प्रवर्गों के संरक्षण के लिए लागू होते हैं, ऐसे उपबंध, पर्याप्त व्यापक भाषा में अभिव्यक्त होने के कारण, अभिरक्षा में व्यक्तियों को भी लागू होते हैं (यद्यपि उन्हीं तक सीमित नहीं हैं), और

(ii) वे उपबंध जो विनिर्दिष्टतः अभिरक्षा में व्यक्ति के संरक्षण पर केंद्रित हैं।

इस प्रकार, दंड संहिता के अध्याय 16 (मानव शरीर के विरुद्ध अपराध) में अंतर्विष्ट अधिकतर उपबंध अभिरक्षा में व्यक्तियों और साथ-ही-साथ अन्य व्यक्तियों को समाविष्ट करते हैं। इसके प्रतिकूल, दंड संहिता की धारा 330, विनिर्दिष्टतः संस्वीकृति उद्दापित करने के लिए उपहति कारित करने के संदर्भ में है (यद्यपि इसमें कतिपय अन्य कृत्य भी आते हैं)।

3.6 धारा 166 और 167

दंड संहिता की धारा 166 निम्नवत् है :

"166. जो कोई लोक सेवक होते हुए विधि के किसी ऐसे निदेश को जो उस ढंग के बारे में हो जिस ढंग से लोक सेवक के नाते उसे आचरण करना है जानते हुए अवज्ञा इस आशय से, या संभाव्य जानते हुए करेगा कि ऐसी अवज्ञा से किसी व्यक्ति को क्षति कारित करेगा वह सादा कारावास से, जिस की अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

इसकी पुनरावृत्ति की जा सकती है कि "क्षति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत अपहानि, जो शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति को अवैध रूप से कारित हुई है आती है।

धारा 167 ऐसे लोक सेवक को, जो क्षति कारित करने के आशय से अशुद्ध दस्तावेज रचता है, दंड के लिए उपबंध करती है।

3.7 धारा 220

संहिता की धारा 220 ऐसे व्यक्ति के लिए (व्यक्तियों, आदि को परिरुद्ध करने के विधिक प्राधिकार सहित) दंड का उपबंध करती है, जो भ्रष्टतापूर्वक या विद्वेषपूर्वक किसी व्यक्ति को, यह जानते हुए कि ऐसा करने में वह विधि के प्रतिकूल कार्य कर रहा है ; परिरुद्ध करता है।

---

1. गोपालन बनाम मद्रास राज्य, 1950 एस० सी० आर० 88, हंसमुख बनाम गुजरात राज्य, ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 28; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शोभा राम ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 1910, 1917.

3.8 धारा 330, 331

भारतीय दंड संहिता का अध्याय 16 (मानव शरीर पर प्रभाव डालने वाले अपराध) संहिता का दूसरा सबसे बड़ा अध्याय है। इसमें निम्नतम प्रमाण के शारीरिक आक्रमण (हमले) से लेकर शारीरिक अपहानि के उच्चतम प्रवर्ग, अर्थात् मानव जीवन के निर्वापन तक शरीर के प्रायः प्रत्येक किस्म के अवरोध, हस्तक्षेप या अपहानि के लिए दंड का उपबंध है। तथापि, वर्तमान प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है कि कतिपय ऐसी विनिर्दिष्ट धाराओं तक परिचर्चा को सीमित रखना पर्याप्त है जो अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से प्रत्यक्षतः सुसंगत है। धारा 330 के अधीन, कोई व्यक्ति जो कोई संस्वीकृति या कोई जानकारी जिससे किसी "अपराध या अवचार का पता चल सके" उद्दापित करने के लिए या किसी संपत्ति, आदि का प्रत्यावर्तन मजबूर करने के लिए स्वेच्छया उपहति कारित करेगा, सात वर्ष तक के कारावास से और जुर्माने से दंडनीय होगा। दृष्टान्त (क) और (ख) विशेष संगति के हैं जो निम्नवत् हैं :

"(क) क, एक पुलिस अफिसर, ब को यह संस्वीकृति करने को कि उसने अपराध किया है, उत्प्रेरित करने के लिए यातना देता है। क इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।

(ख) क, एक पुलिस आफिसर, यह बतलाने को कि अमुक चुराई गई संपत्ति कहां रखी है उत्प्रेरित करने के लिए ख को यातना देता है क इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।"

धारा 331 उस व्यक्ति को दंड का उपबंध करती है जो संस्वीकृति उद्दापित करने के लिए या विवश करके संपत्ति या प्रत्यावर्तन कराने के लिए घोर उपहति कारित करेगा। अपराध 10 वर्ष तक के कारावास से और जुर्माने से दंडनीय है।

3.9 धारा 340 से धारा 348 तक

भारतीय दंड संहिता की धारा 340 से 348 तक की धाराएं सदोष अवरोध, और सदोष परिरोध तथा उनकी गुरुता से संबंधित हैं। निःसंदेह, वे यह विचार करती हैं कि परिरोध एक संघटक जो "सदोष" विशेषण द्वारा प्रमुखता से स्पष्ट किया गया है अपने आप में ही अवैध है। किन्तु हमें धारा 348 को निर्देशित करना होगा जिसमें उस व्यक्ति को दंड के लिए उपबंध है जो किसी संस्वीकृति आदि के उद्दापन के लिए किसी व्यक्ति को सदोष परिरुद्ध करता है। यह धारा ऐसी जानकारी जिससे किसी अपराध या अवचार का पता चल सके, निकालने के लिए किए गए उद्दापन को भी दंडित करती है।

3.10 धारा 376 (2)

भारतीय दंड संहिता का दूसरा उपबंध जो, ध्यान देने योग्य है, धारा 376 (2) है जो पुलिस आफिसर और अन्य लोक सेवकों, अस्पतालों और महिला संस्थाओं, आदि के भारसाधक व्यक्तियों, द्वारा किए गए बलात्संग के वर्धित रूप के संबंध में है।

3.11 धारा 376क से धारा 376घ तक

अभिरक्षान्तर्गत लैंगिक अपराधों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 376क से 376घ तक में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है जो निम्न लिखित के संबंध में हैं—

(क) किसी लोक सेवक द्वारा अभिरक्षा में किसी स्त्री के साथ संभोग,

(ख) जेल, प्रतिप्रेषण गृह, आदि के अधीक्षक द्वारा संभोग,

(ग) अस्पताल के प्रबंधतंत्र के सदस्य या कर्मचारिवृन्द द्वारा अस्पताल के किसी अंतःवासी के साथ संभोग।

3.12 धारा 503 और धारा 506

आपराधिक अभित्रास, भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के साथ पठित धारा 503 द्वारा दंडनीय है।

95-M/J(D)127MoHLJ&CA—2

3.13 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 : साधारण प्रेक्षण

वर्तमान रिपोर्ट को विषय वस्तु के साथ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की सुसंगति द्वि-आयामी है प्रथमतः संहिता में ही अभिरक्षान्तर्गत यातना के विरुद्ध रक्षोपाय के रूप में कार्य करने के लिए आशयित उपबंध अंतर्विष्ट है। वे उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे सकारात्मक पहलू कहा जा सकता है। दूसरे, संहिता के उन उपबंधों को, जो विधि प्रवर्तन अभिकरणों को विभिन्न शक्तियां प्रदत्त करते हैं, जहां तक वे प्राधिकार के दुरुपयोग की संभावना का सृजन कर सकते हैं, ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। इसे नकारात्मक पहलू माना जा सकता है। उपबंधों के इन दो प्रवर्गों के अतिरिक्त, हमारा संबंध इस प्रश्न से है कि संहिता के उपबंधों की अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के प्रतिनिर्देश से कहां तक अनुपूर्ति किए जाने की आवश्यकता है ताकि ऐसे अपराधों की बाबत अन्वेषण, विचारण, दंड और उपचारी उपायों पर संहिता की स्कीम में पर्याप्त रीति से ध्यान रखा जा सके।

सुविधा की दृष्टि से हम संहिता के उपबंधों पर धाराओं के अनुसार और साथ ही साथ उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए चर्चा करेंगे।

3.14 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 : धारा 41 : गिरफ्तारी

गिरफ्तार करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को प्रदत्त की गई है। वर्तमान प्रयोजन के लिए धारा 41 (क) सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपबंध है क्योंकि इस उपबंध के अधीन कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारण्ट के बिना किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है,—

> "(क) जो किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है या जिसके विरुद्ध इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है विश्वसनीय इत्तिला प्राप्त हो चुकी है या उचित संदेह विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है"।

3.15 धारा 49 : अवरोध

संहिता की धारा 49 में यह उपबंध है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवरुद्ध न किया जाएगा जितना उसको निकल भागने से रोकने के लिए आवश्यक है। इसमें उसके निकल भागने के निवारण पर जोर दिया गया है जिससे अवरोध की आवश्यकता पड़ सकती है। तथापि, उसी के साथ-साथ, अवरोध की प्रमात्रा आवश्यक शब्द द्वारा अति सतर्कतापूर्वक परिभाषित है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संपूर्ण उपबंध एक निश्चित प्रतिषेध से आरंभ होता है क्योंकि विधि का समावेश यह है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अनावश्यक अवरोध के अध्यधीन नहीं किया जाएगा। किसी भी अधिक अवरोध से निश्चित रूप से नुकसानी के लिए वाद हेतुक उत्पन्न होगा क्योंकि ऐसे किसी मामले में, विधिपूर्ण प्राधिकार के सिद्धान्त द्वारा प्रदत्त सिविल कार्रवाई से उन्मुक्ति लागू नहीं होगी। उपधारणतः, समुचित दांडिक धाराएं भी भारतीय दंड संहिता की धारा 340 से धारा 348 तक के और उसी संहिता की धारा 349 से धारा 356 तक के भी जो हमला और आपराधिक बल से संबद्ध हैं, प्रतिनिर्देश से उपलब्ध होंगे। यदि विधिपूर्ण प्राधिकार अधिक हो जाता है तो दंड संहिता की धारा 76 से 79 तक के अधीन अन्यथा उपलब्ध संरक्षण का उस परिणाम के साथ दावा नहीं किया जा सकता है कि दांडिक कार्रवाई गलती करने वाले लोक सेवक के विरुद्ध चलाने योग्य होंगे।

3.16 धारा 50 : गिरफ्तारी के आधार

यह धारा निम्नवत् है :—

"50. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधारों और जमानत के अधिकार की इत्तिला दी जाना।

(1) किसी व्यक्ति को वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने वाला प्रत्येक पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति को उस अपराध की, जिसके लिए वह गिरफ्तार किया गया है, पूर्ण विशिष्टियां या ऐसी गिरफ्तारी के अन्य आधार तुरंत संसूचित करेगा

(2) जहां कोई पुलिस अधिकारी अजमानतीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति को वारण्ट के बिना गिरफ्तार करता है वहां वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इत्तिला देगा कि वह जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है और वह अपनी ओर से प्रतिभुओं का इंतजाम करे"।

धारा 50, को विशिष्टतः संविधान के अनुच्छेद 22(1) के परिप्रेक्ष्य के आज्ञापक माना गया है जिससे कि इस धारा का अननुपालन, गिरफ्तारी और निरोध को अवैध[1] बना देता है।

3.17 धारा 53 : अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा

कतिपय परिस्थितियों में अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा आवश्यक हो सकती है और संहिता की धारा 53 द्वारा इसको ध्यान में रखा गया है। विधि की जैसी वर्तमान स्थिति है उसके अनुसार उप निरीक्षक से अनिम्न पंक्ति के पुलिस अधिकारी की प्रार्थना पर किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी के लिए अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षा करना विधिपूर्ण है, यदि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार है कि उसकी शारीरिक परीक्षा ऐसा अपराध किए जाने के बारे में साक्ष्य प्रदान करेगी। इस प्रयोजन के लिए ऐसा बल जो उचित रूप से आवश्यक है प्रयुक्त किया जा सकता है। किसी स्त्री की दशा में, धारा 53 (2) यह उपबंध करती है कि परीक्षा केवल किसी महिला द्वारा, जो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी है या उसके पर्यवेक्षण में की जाएगी। यह उपबंध, स्पष्टतः ऐसी परीक्षा के समय लैंगिक अनाचार के विरुद्ध अभिरक्षा के लिए आशयित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि संहिता का संशोधन करने के लिए, राज्य सभा में (9 मई, 1994) को पुरःस्थापित हाल के 1994 के विधेयक संख्यांक 39 में यह स्पष्ट करने की वांछा की गई है कि "परीक्षा" के अंतर्गत खून, लैंगिक हमले की दशा में खलाब, बालों के नमूने और नाखून की कतरनों की परीक्षा और ऐसे अन्य परीक्षणों का किया जाना भी है, जिन्हें रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी किसी विशिष्ट मामले में आवश्यक समझता है। ऐसा लगता है कि स्पष्टीकरण इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में वांछनीय समझा गया है कि रोगविज्ञानीय परीक्षण, कतिपय न्यायालयों के समक्ष (यद्यपि विधेयक के खंडों पर टिप्पण में इस पक्ष का उल्लेख नहीं है) विचार का विषय रहा है।

3.18 धारा 54 : गिरफ्तार व्यक्ति की प्रार्थना पर चिकित्सीय परीक्षा

संहिता की धारा 54 किसी गिरफ्तार व्यक्ति को अपने शरीर की जांच कराने का अधिकार प्रदान करता है यदि अभिकथन यह है कि परीक्षा से ऐसा साक्ष्य प्राप्त होगा जो उसके द्वारा, किसी व्यक्ति के विरुद्ध, किसी अपराध के किए जाने को नासाबित कर देगा। इस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गिरफ्तार व्यक्ति को यह सूचना देना मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है कि यदि उसे यातना अनाचार आदि का कोई परिवाद है तो उसे अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने का ऐसा अधिकार प्राप्त है।[2]

यह उल्लेखनीय है कि संहिता का संशोधन करने के लिए वर्तमान विधेयक (राज्य सभा विधेयक सं० 35, 9 मई, 1994) में धारा 54 में निम्नलिखित उपधारा जोड़े जाने की प्रस्थापना है:—

> "(2) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई परीक्षा की जाती है, वहां रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी ऐसी परीक्षा की रिपोर्ट गिरफ्तार किए गए व्यक्ति या इस प्रकार नामनिर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा निवेदन किए जाने पर उन्हें देगा।"

ऐसा लगता है कि इस प्रस्थापना का सुझाव, इस तथ्य द्वारा किया गया है कि 1984 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 1 द्वारा, धारा 54 के अंत में निम्नलिखित वाक्य अंतः स्थापित करके उस धारा का संशोधन किया गया है।

> "रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी ऐसी परीक्षा की रिपोर्ट की एक प्रति, निःशुल्क गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को तत्काल उपलब्ध कराएगा।"

---

1. **अशोक बनाम राज्य**, 1987 क्रि०ला०ज० 1750।
2. **शीला बोर्से बनाम महाराष्ट्र राज्य**, ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 378 : 1983 क्रि०ला०ज० 642।

3.19 धारा 56, 57 और 58 : गिरफ्तारी के पश्चात् कार्यवाही

संहिता की धारा 56 में यह उपबंध है कि वारण्ट के बिना गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी अनावश्यक विलंब के बिना और जमानत से संबंधित उपबंधों के अधीन रहते हुए, उस व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है, उस मामले में अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष या किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के समक्ष भेजेगा। धारा 57 के अनुसार कोई पुलिस अधिकारी वारण्ट के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखेगा जो उस मामले की सब परिस्थितियों में उचित है तथा ऐसी अवधि मजिस्ट्रेट के धारा 167 के अधीन विशेष आदेश के अभाव में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर, चौबीस घंटे से अधिक की नहीं होगी। धारा 57 के उपबंध आज्ञापक हैं।"[1]

धारा 58 में यह उपबंध है कि पुलिस थानों के भारसाधक अधिकारी जिला मजिस्ट्रेट को, या उसके ऐसा निदेश देने पर, उपखंड मजिस्ट्रेट को, अपने-अपने थानों की सीमाओं के अन्दर वारण्ट के बिना गिरफ्तार किए गए सब व्यक्तियों के मामलों की रिपोर्ट करेंगे, चाहे उन व्यक्तियों की जमानत ले ली गई हो या नहीं।

इन धाराओं का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पुलिस द्वारा, दीर्घकालीन निरोध का अवलंब न लिया जाए और निरुद्ध व्यक्ति को मजिस्ट्रेट को ऐसी कोई समस्या बताने का अवसर प्राप्त हो जाए जिसका उसे गिरफ्तारी के बाद सामना करना पड़ा हो।

3.20 धारा 75 और 76 : वारण्ट के अधीन गिरफ्तारी

जहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी वारण्ट पर दी जाती है, वहां संहिता की धारा 70 से 81 तक लागू हो जाती है, जिनमें से धाराएं 75 और 76 वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं। वे निम्नवत् हैं :—

> "75. **वारण्ट के सार की सूचना**—पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन कर रहा है, उस व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार करना है, उसका सार सूचित करेगा और यदि ऐसी अपेक्षा की जाती है तो वारण्ट उस व्यक्ति को दिखा देगा।
>
> 76. **गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का न्यायालय के समक्ष अविलंब लाया जाना**—पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी के वारण्ट का निष्पादन करता है गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को (धारा 71 के प्रतिभूति संबंधी उपबंधों के अधीन रहते हुए) अनावश्यक विलम्ब के बिना उस न्यायालय के समक्ष लाएगा जिसके समक्ष उस व्यक्ति को पेश करने के लिए वह विधि द्वारा अपेक्षित है :
>
> परन्तु ऐसा विलम्ब किसी भी दशा में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घंटे से अधिक नहीं होगा।"

3.21 धारा 154 : संज्ञेय मामलों में इत्तिला

किसी अपराध की बाबत दांडिक प्रक्रिया का अवलंब लिया जा सके, इस क्रम में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन अभिगम की दो प्रमुख पद्धतियां उपलब्ध हैं। यदि अपराध संज्ञेय है तो कोई व्यक्ति मामले की रिपोर्ट, पुलिस को कर सकता है। विकल्पतः वह चाहे अपराध संज्ञेय हो या नहीं मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद कर सकता है। संहिता की धारा 154 किसी संज्ञेय मामले की सूचना, पुलिस को दिए जाने के संबंध में है। वर्तमान रिपोर्ट में इस धारा की सुसंगति, साधारण है, यह धारा सभी संज्ञेय अपराधों को लागू होती है अतः इसमें पुलिस द्वारा सदोष गिरफ्तारी या यातना आदि से संबद्ध अपराध भी शामिल होंगे धारा 154 की स्कीम का, सुविधा के लिए निम्नवत् विश्लेषण किया जा सकता है :—

(क) किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को दी गई इत्तिला, लिखित रूप में दी जाएगी ;

---

1. **बली बनाम बिहार राज्य** ए० आई० आर० 1981, एस० सी० 928: क्रि० ला० ज० 470.

(ख) उस पर उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे, जो उसे दे और उसका सार, विहित पुस्तक में प्रविष्ट किया जाएगा ;

(ग) अभिलिखित इत्तिला की प्रति, इत्तिला देने वाले व्यक्ति को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी ;

(घ) यदि पुलिस द्वारा इत्तिला को अभिलिखित करने से इंकार किया जाता है तो व्यथित व्यक्ति, इत्तिला का सार डाक द्वारा संबद्ध पुलिस अधीक्षक को देगा। यदि पुलिस अधीक्षक का यह समाधान हो जाता है कि इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता है तो वह या तो स्वयं मामले का अन्वेषण करेगा, या अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को ऐसा करने का निदेश देगा।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुलिस अन्वेषण आरंभ करे, उसके पूर्व संज्ञेय अपराध के किए जाने की उचित आशंका होनी आवश्यक है।[1]

3.22 धारा 160 : साक्षियों की हाजिरी

पुलिस की शक्तियों के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपबंध संहिता की धारा 160 (1) में अंतर्विष्ट है, जो निम्नवत् है :

> "160. **साक्षियों की हाजिरी की अपेक्षा करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति**—(1) कोई पुलिस अधिकारी जो इस अध्याय के अधीन अन्वेषण कर रहा है, अपने थाने की या किसी पास के थाने की सीमाओं के अन्दर विद्यमान किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसका दी गई इत्तिला से या अन्यथा उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित होना प्रतीत होता है, अपने समक्ष हाजिर होने की अपेक्षा लिखित आदेश द्वारा कर सकता है और वह व्यक्ति अपेक्षानुसार हाजिर होगा :
>
> परन्तु किसी पुरुष से जो पन्द्रह वर्ष से कम आयु का है या किसी स्त्री से, ऐसे स्थान से जिसमें ऐसा पुरुष या स्त्री निवास करती है, भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।"

इस धारा का, परंतुक में अंतर्विष्ट, अभिव्यक्त प्रतिषेध को देखते हुए विशिष्ट महत्व है क्योंकि उसमें किसी भी आयु की स्त्री को और पन्द्रह वर्ष से कम आयु के पुरुष को उस स्थान से भिन्न स्थान पर समन नहीं किया जाएगा, जहां वह निवास करते हैं। विधायिका ने, यदि धारा का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो प्राधिकार के दुरुपयोग की संभावना को, लगता है, ध्यान में रखा है।

3.23 धारा 163 : उत्प्रेरण का प्रतिषेध

इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को कोई संस्वीकृति करने के लिए, किसी परोक्ष प्रभाव के अधीन किया जा सकता है, संहिता की धारा 163(1) अभिव्यक्त रूप से उपबंध करती है कि कोई पुलिस अधिकारी या प्राधिकार वाला अन्य व्यक्ति भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 24 में यथावर्णित कोई उत्प्रेरण, धमकी या वचन न तो देगा और न करेगा तथा न दिलवाएगा और न करवाएगा। सुविधा के लिए, हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 आगे उद्धृत कर रहे हैं :—

> "24. **उत्प्रेरण, धमकी या वचन द्वारा कराई गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में कब विसंगत होती है**— अभियुक्त व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृति दाण्डिक कार्यवाही में विसंगत होती है, यदि उसके किए जाने के बारे में न्यायालय को प्रतीत होता हो कि अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध आरोप के बारे में वह ऐसी उत्प्रेरण, धमकी या वचन द्वारा कराई गई है जो प्राधिकारवान व्यक्ति की ओर से दिया गया है और जो न्यायालय की राय में इसके लिए पर्याप्त हो कि वह अभियुक्त व्यक्ति को यह अनुमान करने के लिए उसे युक्तियुक्त प्रतीत होने वाले आधार देती है कि उसके करने से वह अपने विरुद्ध कार्यवाहियों के बारे में ऐहिक रूप का कोई फायदा उठाएगा या ऐहिक रूप की किसी बुराई का परिवर्जन कर लेगा।"

---

1. **सीता विल्सन बनाम हिमाचल प्रदेश**, 1992 क्रि०ला०ज० 2400 (हि०प्र०); **मीना नर्गिस बेगाउद बनाम फरीदा बी बेबेरा**, 1991 क्रि०ला०ज० 2694 (कर्नाटक)।

3.24 धारा 164 : मजिस्ट्रेट के समक्ष संस्वीकृति

संहिता की धारा 164 में, दांडिक प्रक्रिया के लिए अत्यंत महत्व और प्रक्रिया में निष्ठा के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण कतिपय उपबंध अंतर्विष्ट हैं। इस धारा के पूर्ण महत्व का अनुमान तब तक पूरी तरह नहीं लगाया जा सकता जब तक कि हम भारतीय साक्ष्य अधिनियम और दंड प्रक्रिया संहिता के कतिपय प्रमुख उपबंधों को ध्यान में न रखें। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अनुसार किसी पुलिस आफिसर से की गई कोई संस्वीकृति उस व्यक्ति के विरुद्ध साबित नहीं की जाएगी जिसने वह संस्वीकृति की है। धारा 26 के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा की गई कोई संस्वीकृति, जो उसने उस समय की हो जब वह पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात उपस्थिति में न की गई हो। साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 के अनुसार किसी पुलिस आफिसर को की गई संस्वीकृति अलंगत हो जाती है, इसके बावजूद विधायिका ने संहिता की धारा 164 अधिनियमित की है, जो एक प्रक्रिया है जिसके अधीन सक्षम मजिस्ट्रेट, किसी अन्वेषण के क्रम में या उसके पश्चात् किसी प्रक्रम पर, जांच या विचारण के प्रारम्भ होने के पूर्व, उसको की गई संस्वीकृति अभिलिखित कर सकेगा। व्यवहार में, जब यह पुलिस का मामला होता है कि अभिरक्षा में कोई अभियुक्त व्यक्ति संस्वीकृति करना चाहता है तब उसे सक्षम मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाया जाता है। जो, धारा 164 में विहित व्यापक औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् संस्वीकृति अभिलिखित करता है। वे औपचारिकताएं प्राथमिकता (i) मजिस्ट्रेट का समाधान कि संस्वीकृति स्वैच्छिक है, और (ii) कानूनी चेतावनी का समुचित अभिलेख जो उपर्युक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आशयित है ; सुनिश्चित करने के लिए आशयित है।

वर्तमान प्रयोजन के लिए एक और पक्ष संगत है। जब कि संहिता की धारा 161 के अधीन, अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी, मामलों के तथ्यों से परिचित होने के लिए संभावित किसी व्यक्ति की मौखिक रूप से जांच कर सकता है और ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए कथन को लेखबद्ध कर सकता है। संहिता की धारा 162 यह उपबंध करती है कि कथन, साक्षियों द्वारा हस्ताक्षरित नहीं होगा तथा यह भी कि कथन उस समय जब कथन किया गया था अन्वेषणाधीन किसी अपराध की बाबत किसी जांच या परीक्षण में किसी प्रयोजन (विधि में यथा उपबंधित के सिवाय) के लिए प्रयोग नहीं किया जाएगा। यहीं वह प्रक्रम है जब कि संहिता की धारा 164 उपयोगी हो जाती है। उस धारा के अधीन, सक्षम मजिस्ट्रेट किसी अन्वेषण के क्रम में या उसके पश्चात् किसी समय, विचारण के प्रारम्भ के पूर्व, उसको किए गए किसी कथन को, शपथ पर, अभिलिखित कर सकेगा।

3.25 धारा 313 : न्यायालय में अभियुक्त व्यक्ति की परीक्षा

संहिता की धारा 313 के अधीन, दांडिक न्यायालय से यह अपेक्षा है कि वह अभियोजन का मामला पूरा हो जाने के पश्चात् अभियुक्त को, अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किन्हीं परिस्थितियों का स्वयं स्पष्टीकरण करने में समर्थ बनाने के लिए परीक्षा करे। किन्तु धारा 313(2) अभियुक्त को शपथ दिलाने का प्रतिषेध करती है।

3.26 धारा 315 : अभियुक्त व्यक्ति का साक्षी होना

संहिता की धारा 315, अभियुक्त व्यक्ति को प्रतिरक्षा के लिए सक्षम साक्षी बनाती है, जिस दशा में वह आरोपों को नासाबित करने के लिए शपथ पर साक्ष्य दे सकता है, इस प्रकार अभिसाक्ष्यिक बाध्यता के विरुद्ध वह संवैधानिक प्रसुविधा का कवच प्रदान करती है। धारा 315(1) के परन्तुक (ख) में यह और उपबंध है कि अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य देने में असफलता को, पक्षकारों में से किसी के द्वारा या न्यायालय द्वारा टीका टिप्पणी का विषय न बनाया जाएगा और न उसे उसके विरुद्ध या किसी सहअभियुक्त के विरुद्ध कोई उपधारणा की जाएगी।

3.27 धारा 357 : प्रतिकर

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 दांडिक न्यायालय को किसी अपराध के शिकार व्यक्ति को, जब न्यायालय निर्णय पारित करता है तब प्रतिकर का अधिनिर्णय पारित करने के लिए सशक्त करती है।

आदेश केवल तभी पारित नहीं किया जा सकता जब न्यायालय जुर्माने का दण्ड देता है, अपितु तब भी दे सकता है जब वह जुर्माना अधिरोपित नहीं करता है। प्रतिकर का आदेश उस व्यक्ति के पक्ष में किया जा सकता है जिसे अपराध द्वारा हानि या क्षति हुई है। धारा के उस भाग में, जो वहां लागू होता है जहां जुर्माना अधिरोपित किया जाता है, यह विनिर्दिष्ट रूप में कहा गया है कि हानि या क्षति ऐसी हो जिसमें किसी सिविल वाद में प्रतिकर वसूलनीय होगा। जहां जुर्माना अधिरोपित नहीं किया जाता है वहां यह अपेक्षा अभिव्यक्त रूप से नहीं कथित की गई है। किन्तु "क्षति" शब्द अपने आप में यह सुझाव देता है कि यह अनुयोज्य दावा होना चाहिए। [भारतीय दंड संहिता की धारा 43 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(ज) देखिए] संक्षेप में संहिता की धारा 357 दांडिक न्यायालयों को धारा में अधिकथित सीमाओं के भीतर सिविल न्यायालय के रूप में भी कृत्य करने के लिए सशक्त करती है।

3.28 भारतीय साक्ष्य अधिनियम : साधारण संप्रेक्षण

साक्ष्य अधिनियम निम्नलिखित प्रमुख विषयों के संबंध में कार्य करता है :–

(क) वे तथ्य जिनके बारे में साक्ष्य दिया जा सकता है ;

(ख) उस साक्ष्य का प्रकार, जो ऐसे तथ्यों के बारे में दिया जा सकता है ;

(ग) सबूत का भार और वे अपवादाएं जो निकाली जा सकती हैं ;

(घ) साक्षियों की परीक्षा की पद्धति, और सार के बारे में अनुज्ञेय सीमाएं तथा उनसे पूछे जाने वाले प्रश्नों का प्ररूप, और

(ङ) इन सभी विषयों की बाबत न्यायाधीश की भूमिका।

इस रिपोर्ट में, हमारा संबंध मुख्यतः ऊपर प्रवर्ग (क) और प्रवर्ग (घ) में आने वाले कतिपय मामलों से है। प्रवर्ग (क) के अधीन संस्वीकृति के बारे में कार्रवाई करना आवश्यक होगा जब कि प्रवर्ग (घ) के अधीन आत्म-अभिशंसन के विरुद्ध प्रसुविधा के संबंध में कार्रवाई करना आवश्यक होगा।

3.29 साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 से 27 तक

संस्वीकृतियों का विषय, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के प्रतिपादन में व्यापक महत्व का है क्योंकि प्रायः ऐसा पाया गया है कि कोई संस्वीकृति उपाप्त करने की प्रवृत्ति, विधि प्रवर्तन अधिकारियों को अनुचित साधनों का अवलंब लेने के लिए प्रेरित करती है। संस्वीकृति से संबंधित साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों का तब तक पूरी तरह मूल्यांकन नहीं किया जा सकता जब तक कि व्यक्ति उस स्थिति को अपने मानस नेत्रों के समक्ष नहीं रखता जिसमें वे अधिनियम में प्रतीत होते हैं। इस निमित्त अधिनियम की स्कीम का विश्लेषण निम्नवत् किया जा सकता है :–

(क) किसी कार्यवाही में किसी पक्षकार द्वारा किया गया "कथन स्वीकृति" (धारा 17) है और यह साक्ष्य में अनुज्ञेय है।

(ख) स्वीकृति, भूल है; संस्वीकृति उसकी एक प्रजाति है, और इसीलिए अनुज्ञेय है।

(ग) फिर भी, चूंकि संस्वीकृति (सामान्य स्वीकृति से यथा सुभिन्न) का परिणाम, किसी दंड का अधिरोपण हो सकता है अतः विधि में उनकी अनुज्ञेयता निर्बंधित करते हुए कतिपय विशेष उपबंध अधिनियमित किए गए हैं। एक ऐसा निर्बंधन, स्वेच्छा से संबंधित है। यदि कोई संस्वीकृति स्वैच्छिक नहीं है तो वह अनुज्ञेय नहीं होगी (धारा 24)।

(घ) कतिपय विशेष स्थितियों में, विधि इस सीमा तक भी अनुमान लगाती है कि स्थिति के दबावों को ध्यान में रखते हुए, संस्वीकृति, स्वैच्छिक नहीं हो सकती है अतः उन्हें साक्ष्य से पूर्णतः बाहर रखते हुए विशेष "अपवर्जनीय" उपबंध अधिनियमित किए गए हैं एक ऐसा उपबंध, धारा 25 में अंतर्विष्ट है जिसमें यह उपबंध है कि किसी पुलिस आफिसर से की गई कोई संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी। ऐसी संस्वीकृति का कभी भी अभियुक्त[1] को सिद्धदोष ठहराने के लिए अधिष्ठायी साक्ष्य के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता।"

1. पाडलोस बनाम केरल राज्य 1990 क्रि०ला०ज० 100 (केरल)।

अन्य अपवर्जनकारी उपबंध, साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 में अंतर्विष्ट है जिसके अधीन कोई भी संस्वीकृति जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो जब वह पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात उपस्थिति में न की गई हो। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 की ओर पहले ही निर्देश कर दिया गया है जिसके अधीन मजिस्ट्रेट कोई संस्वीकृति अभिलिखित कर सकता है।

(ङ) अंततः, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 (जो विलक्षणतः परन्तु शब्द से आरंभ होती है) में यह अधिकथित है कि जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतः संबंधित है, सुसंगत है। यह धारा केवल धारा 27, या पूर्ववर्ती अन्य धारा या धाराओं पर अध्यारोही प्रभाव रखती है या नहीं, एक प्रश्न है हमें उस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए जिसका संबंध है, वह यह है कि यदि "जानकारी" दी जाती है और उससे किसी तथ्य का "पता चलता" है (यह तथ्य सुसंगत होना चाहिए यद्यपि धारा में स्पष्टतः, ऐसा नहीं कहा गया है) तो जानकारी, साक्ष्य में ग्राह्य हो सकती है—

(i) भले ही व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में हो, और

(ii) इस तथ्य के होते हुए भी कि वह संस्वीकृति है।

जहां तक कि धारा 27 अभिरक्षा में किसी व्यक्ति द्वारा की गई संस्वीकृतियों से संबंधित अपवर्जनकारी नियमों पर अभिभावी है वह पुलिस को एक सशक्त आयुध प्रदान कर देती है। इस धारा पर विशाल निर्णय विधि का भण्डार यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि पुलिस द्वारा बल और प्रपीड़न का प्रयोग करके संस्वीकृतियां निकालने के लिए इस आयुध का पूरी तरह उपयोग किया गया है। और यदि कोई अंतर्निहित भाव को पढ़ पाने में समर्थ हो सके तो निर्णय विधि यह आशंका भी प्रक्षिप्त करती है कि पुलिस में ऐसी जानकारी उपाप्त करने के लिए जो धारा 27 की औपचारिक अपेक्षाओं का समाधान करती है, ऐसे साधनों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति है जो पूर्णतः विधिसम्मत नहीं है, भले ही ऐसी जानकारी का दिया जाना अभियुक्त व्यक्ति की इच्छाशक्ति के प्रयोग में न हो। यही वह कारण है जिससे हमें जब हम अपनी सिफारिशें देंगे तब इस धारा पर फिर लौटना होगा।[1]

1. रिपोर्ट के अध्याय 11 का पैरा 11.6 देखिए।

अध्याय 4

अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं

4.1 जीवन का अधिकार

मानव अधिकारों से संबंधित अधिकतर अंतरराष्ट्रीय लिखतों में जीवन का अधिकार सुरक्षित रखा गया है। इन लिखतों में जीवन के अधिकार के संरक्षण के लिए साधारण खंड में यह घोषणा की गई है कि प्रत्येक मानव प्राणी को जीवन में निहित हकदारी है जिस अधिकार का विधि द्वारा संरक्षण करने का सरकारें वचन देती हैं, [1-4]।

4.2 सकारात्मक और नकारात्मक पहलू

जहां तक अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं का संबंध है, वे राज्य पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के दायित्व अधिरोपित करती प्रतीत होती हैं। अपने सकारात्मक पहलू में, वे प्रसंविदाएं राज्य और उसके अभिकरणों से जीवन के अधिकार का अतिक्रमण न करने की अपेक्षा करती हैं। यह ऐसे अधिकार का सम्मान करने की बाध्यता में अन्तर्निहित है। उनके नकारात्मक पहलू में, राज्य को कम से कम ऐसे उचित कदम उठाने चाहिए जो प्रसंविदा द्वारा प्रदत्त अधिकार का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। सिविल और राजनैतिक अधिकारों से संबंधित प्रसंविदा के विषय में, प्रसंविदा के अधीन स्थापित मानव अधिकार समिति, यह दृष्टिकोण अपनाए हुए प्रतीत होती है कि प्रसंविदा के अधीन विशिष्ट राज्यों की बाध्यताएं सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों किस्में समाविष्ट कर लेती हैं।[5]

4.3 संयुक्त राष्ट्र घोषणा

संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा ने 9 दिसंबर, 1975 को यातना और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड से व्यक्तियों के संरक्षण के लिए घोषणा अंगीकार की थी। घोषणा का अनुच्छेद 5, विधि प्रवर्तन अधिकारियों की यातना के विरुद्ध सघन प्रशिक्षण की अपेक्षा करता है। अनुच्छेद 7, पूछताछ पद्धति और प्रथाओं, साथ ही साथ अभिरक्षान्तर्गत इन्तजामों के पुनर्विलोकन की प्रणाली को ध्यान में रखता है। अनुच्छेद 9 राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य करता है कि राष्ट्रीय दांडिक विधि के अधीन यातना के कृत्य, अपराध बनाए जाएं। घोषणा यह भी उपबंध करती है कि शिकार व्यक्तियों को प्रतितोष और प्रतिकर दिया जाएगा।

4.4 आचरण संहिता

दिसंबर, 1979 में संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा द्वारा विधि प्रवर्तन अधिकारियों के लिए आचरण संहिता अंगीकार की गई थी। संहिता का अनुच्छेद 5, विधि प्रवर्तन अधिकारियों को यातना के लिए किसी

1. सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा का अनुच्छेद 6(1) (संयुक्त राष्ट्र, 1966) मूल पाठ लैन ब्राउनली (संस्करण) में, बेसिक डाक्युमेंट्स आन ह्युमन राइट्स (ओ० यू० पी०, 1985) पृष्ठ 128।
2. ह्यूमन राइट्स एंण्ड फंडामेंटल फ्रीडम्स पर यूरोपीय अभिसमय का अनुच्छेद 2(1) (काउंसिल और यूरोप, 1950)। मूल पाठ लेन ब्राउनली (संस्करण) में, बेसिक डाक्यूमेंट्स आन ह्यूमन राइट्स (ओ०यू०पी० 1985) पृष्ठ 242।
3. अमेरिकन कन्वेंशन आफ ह्यूमन राइट्स का अनुच्छेद 4(1) (आर्गनाइजेशन आफ अमेरिकन स्टेट्स, 1969) मूल पाठ, लैन ब्राउनली (संस्करण) में, बेसिक डाक्युमेंट्स आफ ह्यूमन राइट्स (ओ०यू०पी०, 1988) पृष्ठ 391।
4. अफ्रीकन चार्टर आन ह्यूमन एण्ड पीपुल्स राइट्स का अनुच्छेद 4 (आर्गनाइजेशन आफ अफ्रीकन यूनिटी, 1981) मूलपाठ के गिल्फोर एण्ड डब्ल्यू बेनडेक (संस्करण) में। न्यू पर्सपेक्टिव्स एण्ड कन्सेप्शन्स आफ इंटरनेशनल ला : एन एफ्रो० यूरोपियन डायलाग, (स्प्रिंगर-वर-इयांग, वियांग) पृष्ठ 247।
5. देखिए डेनियल मांग्रवा बेंगो बनाम जैरी, पत्र सं० 16/1977, महासभा को ह्यूमन राइट्स कमेटी की रिपोर्ट, यू० एन० डाक्युमेंट्स नं० ए/38/40 (1963) पृष्ठ 134।

पैड्रो पैब्लो कोनार्गो बनाम कोलम्बिया, पत्र संख्या 9ए/37/40(1982), पृष्ठ 137। देखिए ओलिस फैरेल बनाम युनाइटेड किंगडम, यूरोपियन कन्वेंशन आन ह्यूमन राइट्स के वाल्यूम 25, यार्क बीके० अप्लीकेशन नं० 9013/80, पृष्ठ 124।

कृत्य के किए जाने, उकसाने या उसे सहन करने से प्रतिषिद्ध करता है। यातना के शिकार व्यक्तियों से संबंधित संयुक्त राष्ट्र स्वैच्छिक निधि, 1981, ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें यातना दी गई हो और उनके कुटुंबों के सदस्य को मानवीय, विधिक तथा वित्तीय साहाय्य के रूप में, सहायता के स्थापित चैनलों के माध्यम से वितरण के लिए स्वैच्छिक अभिदाय प्राप्त करने के लिए 16 दिसंबर, 1981 के साधारण सभा संकल्प 36/151 के अनुसरण में गठित की गई थी।

4.5 यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय, या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राज्य अभिसमय, 1984

यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राज्य अभिसमय, 1984 तारीख 26 जून, 1987 से प्रवृत्त हुआ था। अभिसमय में कुल 33 अनुच्छेद हैं जो 3 भागों में विभाजित हैं। अभिसमय का भाग 1 यातना की परिभाषा करता है, यातना के कृत्यों और सहबद्ध संकल्पनाओं का प्रतिषेध करता है और अभिसमय के राज्य पक्षकारों को यह सुनिश्चित करने के लिए आबद्ध करता है कि यातना के सभी कृत्य दंडित किए जाएं। भाग 2 में उपर्युक्त प्रतिषेध के प्रवर्तन के लिए तंत्र का उपबंध है। भाग 3 औपचारिक विषयों के संबंध में है।

4.6 यातना की परिभाषा

यातना के विरुद्ध अभिसमय (1984) में "यातना" पद से ऐसे किसी, कृत्य के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति पर ऐसे प्रयोजनों के लिए जैसे उससे या किसी इतर व्यक्ति से किसी ऐसे कृत्य के लिए उसको, जो उसने या किसी इतर व्यक्ति ने किया है या करने के लिए संदिग्ध है दंडित करने के लिए सूचना या संस्वीकृति अभिप्राप्त करने, या उसको या इतर व्यक्ति को अभित्रस्त या प्रपीड़ित करने या किसी प्रकार के विभेदीकरण के आधार पर किसी कृत्य के लिए साशय तीव्र पीड़ा या यातना अधिरोपित की जाती है, जब ऐसी पीड़ा या यातना किसी लोक अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी शासकीय हैसियत में या उसकी उत्प्रेरणा पर या उसकी सहमति या उपमति से अधिरोपित की जाती है, किन्तु इसमें विधिपूर्ण मंजूरी में अंतर्निहित या उसके आनुषंगिक कार्य से ही उद्भूत होने वाली पीड़ा या यातना सम्मिलित नहीं है (अनुच्छेद 1)।

4.7 उपाय

यातना के विरुद्ध संयुक्त राज्य अभिसमय (1984) का अनुच्छेद 2, अभिसमय के राज्य पक्षकारों के लिए उनकी अधिकारिता के भीतर किसी राज्यक्षेत्र में यातना के निवारण के लिए प्रभावी विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक या अन्य उपाय करना आबद्धकर बनाता है। यातना के औचित्य के लिए, किसी भी आपवादिक परिस्थिति का, वह कोई भी क्यों न हो चाहे युद्ध की स्थिति हो या युद्ध की आशंका, अंतरराष्ट्रीय राजनैतिक अस्थिरता या कोई अन्य लोक-प्रशासन आपात; अवलंब नहीं लिया जा सकता है। किसी ज्येष्ठ अधिकारी या लोक प्राधिकारी के आदेश का, यातना के लिए औचित्य के रूप में, अवलंब नहीं लिया जा सकता है। अनुच्छेद 4 निम्नवत है :—

> "अनुच्छेद 4.1 प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि यातना के सभी कृत्य उसकी दांडिक विधि के अधीन अपराध हैं। यही बात, यातना देने के प्रयास को और किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे कृत्य को, जो यातना में सह अपराधिता या भागीदारी गठित करता है, भी लागू होगी। प्रत्येक राज्य पक्षकार इन अपराधों को समुचित शास्तियों द्वारा जिनमें उनकी गंभीर प्रकृति को ध्यान में रखा जाएगा, दण्डनीय बनाया जाएगा।"

4.8 शिक्षा, आदि

अभिसमय के अनुच्छेद 10 में प्रत्येक राज्य पक्षकार से यह भी सुनिश्चित करने की अपेक्षा की गई है कि यातना के विरुद्ध प्रतिषेध की बाबत शिक्षा और सूचना विधि प्रवर्तन कार्मिक, सिविल या सैनिक चिकित्सीय कार्मिक लोक अधिकारियों और अन्य ऐसे व्यक्तियों के प्रशिक्षण में पूरी तरह सम्मिलित हो, जो किसी प्रकार की गिरफ्तारी, निरोध या कारावास के अध्यधीन किसी व्यष्टि की अभिरक्षा, पूछताछ या व्यवहार में अन्तर्ग्रस्त हों।

4.9 नियमों का पुनर्विलोकन

संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (1984) के अनुच्छेद 11 में यह उपबन्ध है कि प्रत्येक राज्य पक्षकार, यातना के किसी मामले के निवारण की दृष्टि से, अपनी अधिकारिता के अधीन किसी राज्यक्षेत्र में, गिरफ्तारी, निरोध या कारावास के किसी रूप के अध्यधीन व्यक्तियों की अभिरक्षा और व्यवहार के लिए इंतजाम साथ ही साथ नियमों, अनुदेशों, पद्धतियों और प्रथाओं को सुव्यवस्थित पुनर्विलोकन के अधीन रखेगा।

4.10 क्रूरता के अन्य कृत्य

संयुक्त राष्ट्र अभिसमय, (1984) के अनुच्छेद 16 में यह उपबन्ध है कि प्रत्येक राज्य पक्षकार अपनी अधिकारिता के अधीन किसी राज्यक्षेत्र में, क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अन्य कृत्यों के अनुच्छेद 1 में यथा परिभाषित यातना के तुल्य नहीं हैं, जब ऐसे कृत्य, किसी लोक अधिकारी या अपनी पदीय हैसियत में कार्य कर रहे अन्य व्यक्ति की मौन सम्मति के परिणाम हों, निवारण का वचनबंध करेगा। विशिष्टतः अनुच्छेद 10, 11, 12 और 13 में अन्तर्विष्ट बाध्यताएं, क्रूरता, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार या दंड के अन्य रूपों के प्रतिनिर्देशों के (यातना के प्रतिनिर्देश के लिए) प्रतिस्थापन के साथ लागू होंगी।

4.11 शिकार व्यक्ति

संयुक्त राष्ट्र के 29 नवम्बर, 1985 को अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक संकल्प अंगीकार किया था। संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए न्याय के आधार भूत सिद्धान्त सम्बन्धी घोषणा का कैराकस रिजोल्यूशन अंगीकार किया था। इस घोषणा में "अपराध के शिकार व्यक्ति" की परिभाषा दी गई है और सदस्य राज्यों से ऐसा न्यायिक और प्रशासनिक तन्त्र स्थापित करने की अपेक्षा की गई है जिससे शिकार व्यक्ति, ऐसी औपचारिक और अनौपचारिक प्रक्रियाओं में प्रतितोष अभिप्राप्त करने में समर्थ हो सके जो शीघ्र, न्यायसम्मत, मितव्ययी और पहुंच योग्य हो। घोषणा आगे सदस्य राज्यों के लिए, अपराध और शक्ति के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के प्रत्यास्थापन तथा प्रतिकर के संदाय का उपबन्ध करने वाली विधियां बनाना, आबद्धकर करती है। 1985 की घोषणा का अनुच्छेद 12 सदस्य राज्यों को आबद्ध करता है कि वे अपराध के शिकार व्यक्तियों को वित्तीय प्रतिकर का उपबन्ध करें। अनुच्छेद 19, राज्यों से यह अपेक्षा करता है कि वे शक्ति का दुरुपयोग विहित करने वाले और ऐसे दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों के लिए उपचारों का उपबन्ध करने वाले मानदण्डों को, अपनी राष्ट्रीय विधियों में निगमित करें। ऐसे उपचारों में प्रत्यास्थापन और प्रतिकर तथा आवश्यक सामग्री चिकित्सीय, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक समर्थन शामिल होना चाहिए।

4.12 भारत की बाध्यताएं

भारत, पूर्वोक्त घोषणाओं का एक पक्षकार है। अतः वह उन्हें कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी कदम उठाने के लिए बाध्यता के अधीन है। संयुक्त राष्ट्र के समक्ष विचार विमर्श में भारत के प्रतिनिधि ने भारत सरकार द्वारा उसके नागरिकों की ओर से एक अभिवंधन किया और इन नागरिकों के लिए एक गारंटी दी जिसका वे, जब कभी उनके अधिकारों की आशंका है, दावा कर सकते थे।[1]

4.13. भारत में, "अंतरराष्ट्रीय विधि और संधियों तथा बाध्यताओं के प्रति सम्मान अभिवर्धन का लोगों का संकल्प" संविधान के अनुच्छेद 51 में प्रतिबिंबित है। वास्तव में, संसद् ने विभिन्न घोषणाओं और अभिसमयों में यथा अंतर्विष्ट अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को प्रभावी बनाने के लिए विधियां अधिनियमित की हैं, इसके अतिरिक्त, न्यायालयों में भी, अपने न्यायिक नवाचारों द्वारा, उन मानदण्डों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित किया था, जहां राज्य या उसके अभिकरण अंतरराष्ट्रीय मानदंडों को कार्यान्वित करने में असफल हुए हैं, और राज्य ने उन मानदंडों का अनुसमर्थन किया है या उन्हें अंगीकार किया है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने, विधि के माध्यम से उन मानदंडों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए निदेश जारी करके

1. नाइजेल रोडले "ट्रीटमेंट आफ प्रिजनर्स अंडर इंटरनेशनल ला" (यूनेस्को पैरिस क्लेरेंडन प्रेस आक्सफोर्ड, 1987) पृष्ठ 59।

अभ्यर्पण किया है। और, न्यायालय ने स्वदेशी विधि का इस प्रकार निर्वचन किया है जिससे कि अन्तरराष्ट्रीय मानदंडों का कार्यान्वयन प्रभावी किया जा सके। हम इस विषय पर सभी निर्णयों को निर्देशित करना आवश्यक नहीं समझते हैं, किन्तु उनमें से कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों को निर्देशित करना उचित होगा।

4.14 निर्णय विधि

फ्रांसिस कोरालें म्यूलिन बनाम प्रशासक, संघ राज्यक्षेत्र, दिल्ली[1] के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने, संविधान के अनुच्छेद, 21 का निर्वचन करते समय, जब यह संप्रेक्षण किया तो अंतरराष्ट्रीय मानदण्डों को सम्यक् मान्यता प्रदान की :

> "————किसी प्रकार की यातना या क्रूरता, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार मानव गरिमा के प्रति क्लेशकर होगा और जीवन के इस अधिकार में अंतर्वेश गठित करेगा और इस दृष्टि से वह तब तक अनुच्छेद 21 द्वारा प्रतिषिद्ध होगा जब तक कि वह विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार न हो, किंतु कोई ऐसी विधि और विधि द्वारा विहित कोई ऐसी प्रक्रिया, जो ऐसी यातना या क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार को प्राधिकृत करती है या उस ओर ले जाती है, युक्तियुक्तता और गैर मनमानेपन के परीक्षण में ठहर नहीं पाएगी यह सीधे तौर पर अवैधानिक या अनुच्छेद 14 और 21 की अतिक्रमणकारी होने के कारण शून्य होगी। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि अनुच्छेद 21 में, यातना या क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार विवक्षित है जो मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 5 में प्रगणित है और सिविल तथा राजनैतिक अधिकार संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 7 द्वारा गारंटीकृत है।"

उच्चतम न्यायालय ने, चरण लाल साहू बनाम भारत संघ[2] में संविधान के अनुच्छेद 21, 48क और 51(छ) का निर्वचन करते समय, निम्नवत् संप्रेक्षण किया :—

> "मानव अधिकारों की हमारी राष्ट्रीय विधाओं के परिप्रेक्ष्य में जीवन स्वातंत्र्य, प्रदूषणयुक्त वायु और जल का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21, 48क और 51(छ) के अधीन गारंटीकृत है। गारंटीकृत संवैधानिक अधिकारों का संरक्षण करने के लिए प्रभावी कदम उठाना राज्य का कर्तव्य है। ये अधिकार, हमारी संप्रभुता को ध्यान में रखकर, अंतरराष्ट्रीय विधाओं और मानकों को तैयार करके संप्रेक्षित और प्रकाशित किया जाता है जैसे कि वे संव्यवहारिक नियमों संबंधी आचरण संहिता के खंड 9 और 13 द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं। अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं में उद्भूत मानकों का सम्मान किए जाने की आवश्यकता है। अपने लोगों की गरिमा और संप्रभुता बनाए रखने के लिए राज्य को विधियां अधिनियमित करके नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रभावी प्रयास करना होगा।"

करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में, मानव अधिकार संबंधी अनुच्छेद 21 पर विचार करते समय, उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत संप्रेक्षण किया :

> "हम निरपवाद मानव अधिकारों का अपनी दीर्घकालीन विरासत के एक भागरूप में और अपनी संवैधानिक विधि में प्रतिष्ठित रूप में भी अनुसमर्थन करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम महसूस करते है कि इस साक्ष्य महत्व को प्रत्येक विधि प्रवर्तन प्राधिकारी द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक है क्योंकि नागरिकों की जन्मजात गरिमा की और उनके समान तथा अहस्तांतरणीय अधिकारों की मान्यता, विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति की आधारशिला है। यदि मानव अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है तो न्यायालय को अपने तेजस्वी न्यायिक प्राधिकार का प्रयोग करके मानव अधिकारों के ऐसे अतिलंघन का मुकाबला करना चाहिए।"

यहां इन निर्णयों को दृष्टांत स्वरूप मात्र यह दर्शित करने के लिए उद्धृत किया गया है कि राष्ट्रीय विधि के प्रश्नों पर कार्रवाई करते समय, अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है।

---

1. फ्रांसिस कोरेल मूलिन बनाम प्रशासक दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र (1981) एस० सी० सी० 608, 619।
2. चरण लाल साहू बनाम भारत संघ (1990) एस० सी० सी० 613, 713।

अध्याय 5

गिरफ्तारी

5.1 भूमिका

गिरफ्तारी की विधि, जो पहले बहुत साधारण विषय के रूप में मानी जाती थी, विभिन्न कारणों से कठिन और कंटीली साबित हुई है। संपूर्ण विश्व में गत आधी शताब्दी के दौरान हुई राजनैतिक घटनाओं ने, गिरफ्तारी की विधि के सूचीकरण में और विधि के प्रशासन में कतिपय सिद्धान्तों के प्रेक्षण की आवश्यकता पर अधिक जोर बढ़ा दिया है। इस विषय पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाएं और मानव अधिकारों के क्षेत्र में हुए विकास, किसी को भी शांत बैठने और यह दृष्टिकोण अपना लेने की अनुज्ञा नहीं देते हैं कि गिरफ्तारी की विधि के संबंध में हर बात ठीक है। इसके साथ जुड़ी हुई यह आशंका भी है जो विभिन्न क्षेत्रों द्वारा व्यक्त की गई है कि कुछ मौकों पर, गिरफ्तारियां, बिना युक्तियुक्त कारण के की जाती हैं, या वे विधि के आशय के प्रतिकूल रीति से की जा रही हैं। भारत में (जैसा कि अन्य देशों में है)। विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय किसी व्यक्ति के निजी स्वातंत्र्य से वंचित किए जाने के विरुद्ध संवैधानिक आदेश, इस विषय की परिचर्चा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक महत्व को सहजतः बढ़ा देता है। इसके अतिरिक्त नागरिक के संजोए गए निजी स्वातंत्र्य के साथ गिरफ्तारी की संकल्पना और उसकी प्रक्रिया का व्यापक तथा अनिवार्य संबंध सुस्पष्टतः इसे विवेक शील विधि प्रदाता और साथ ही न्यायाधीश के लिए निजी उद्विग्नता, और चिन्ता का विषय बना देता है।

5.2 गिरफ्तारी की संकल्पना

बोलचाल में, कोई भी व्यक्ति, "गिरफ्तारी" शब्द द्वारा निजी स्वातंत्र्य का वंचन समझता है और हम इसका अर्थ यह समझते हैं कि जब किसी व्यक्ति को आवागमन की स्वतंत्रता, उसे गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति की इच्छा पर परिसीमित हो जाती है तब वह गिरफ्तार होता है। लैटिन शब्द रैस्टरे का अर्थ था पीछे खड़े होना, पीछे की ओर बने रहना या "सकना" (यही अंग्रेजी शब्द "रैस्ट" का अवशेष के अर्थ में मूल स्रोत है)। पश्च-साहित्य काल में उपसर्ग ऐड ओर रेस्टरे से बनाई गई यौगिक क्रिया "अरेस्टरे" का एक कारण परक कृत्य था : "पीछे की ओर बने रहना", या "सकना", "कारित करना", इसलिए "पकड़ना", "अभिगृहीत करना" अर्थ हुआ। ये अर्थ प्राचीन फ्रेंच से होकर अंग्रेजी में आए थे। (ब्लूम्स बरी डिक्शनरी आफ वर्ड ओरिजिन्स, 1992, पृ० 38)

5.3. गिरफ्तारी के संबंध में विधिक उपबन्ध

कानून द्वारा किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति, विभिन्न स्थितियों में प्रदत्त की गई है। वर्तमान, प्रयोजन के लिए सर्वाधिक संगत उपबंध, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(1) में अंतर्विष्ट हैं जो यह उपबंध करती है कि कोई पुलिस अधिकारी किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है जो किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है, या जिसके विरुद्ध नागरिक के संजोए गए निजी स्वातंत्र्य के साथ गिरफ्तारी की संकल्पना और उसकी प्रक्रिया का व्यापक तथा अनिवार्य संबंध सुस्पष्टतः इसे विवेकशील विधि प्रदाता और साथ ही न्यायाधीश के लिए निजी उद्विग्नता और चिंता का विषय बना देता है।

इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है या विश्वसनीय इत्तिला प्राप्त हो चुकी है या उचित संदेह विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है।" धारा का पहला भाग, पूर्णतः वस्तुपरक है, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति, किसी संज्ञेय में संबद्ध रहा है, तो पुलिस अधिकारी उसे गिरफ्तार कर सकता है। पहले भाग में जो मुख्य बात है वह संज्ञेय अपराध में संबद्ध रहने का तथ्य है। पुलिस अधिकारी के उस मामले में दृष्टिकोण का कोई परिणाम नहीं है। किन्तु धारा 41(1) के अवशेष भाग के संबंध में वस्तुपरक तथ्यों का व्यक्ति परक मूल्यांकन की कतिपय मात्रा के साथ संयोजन मिलता है। धारा 41(1) के इस भाग में वस्तुपरक तत्व, "उचित" या "विश्वसनीय" जैसे विशेषणों के प्रयोग की पुनरावृत्ति द्वारा प्रकाश में लाया गया है। किन्तु वस्तु परक रूप से यह स्थापित करना आवश्यक नहीं है कि गिरफ्तार किए जाने के लिए प्रस्थापित व्यक्ति किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है परिवाद की युक्तियुक्तता, या इत्तिला की विश्वसनीयता या संदेह की युक्तियुक्तता, पर्याप्त होगी, यद्यपि, ये तत्व ठोस मामलों में वाद विवाद की विषय वस्तु हो सकेंगे।

5.4. औपचारिक और अनौपचारिक गिरफ्तारी

इस बात पर पर्याप्त परिचर्चा होती रही है कि गिरफ्तारी कब होती है। यह एक ऐसी परिचर्चा है जो पुलिस अधिकारियों द्वारा "पृच्छा के लिए निरुद्ध करने" या "रोकने और उछलकूद करने" इत्यादि जैसी अपनाई गई प्रथाओं के कारण आवश्यक हो गई प्रतीत होती है। मलेशिया[1] से हुई एक अपील में, लार्ड डेवलिन ने स्थिति का कथन इस प्रकार किया है :

> "गिरफ्तारी तब होती है जब पुलिस अधिकारी वस्तुतः यह कथन करता है कि वह गिरफ्तार कर रहा है या जब वह संबद्ध व्यक्ति को अवरुद्ध करने के लिए बल का प्रयोग करता है। यह तब भी होती है जब शब्दों या आचरण द्वारा वह यह स्पष्ट कर देता है कि वह, यदि आवश्यक हुआ तो, व्यक्ति को वहां जाने से, जहां वह जाना चाह सकता है, निवारित करने के लिए बल का प्रयोग करेगा। यह तब नहीं होती है जब वह किसी व्यक्ति को पृच्छा के लिए रोकता है।"

एक अन्य मामले में[2] (हाउस आफ लार्ड्स में) लार्ड डिपलाक ने अपना विचार, निम्नवत व्यक्त किया था :—

> "गिरफ्तारी एक चालू रहने वाला कृत्य है, यह किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने या उसे अभिरक्षा (कार्य या शब्दों द्वारा, उसे गिरफ्तार करने वाले के नियंत्रण से परे कहीं भी आने-जाने से उसे निरुद्ध करके) में लेने से आरंभ होता है और तब तक बना रहता है जब तक कि इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति, या तो अभिरक्षा से निर्मुक्त नहीं हो जाता है, या किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाकर, मजिस्ट्रेट के न्यायिक कृत्य द्वारा अभिरक्षा में पुनः प्रेषित नहीं किया जाता है।"

5.5 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 की अपेक्षाएं

यह नोटिस किया गया होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41(1)(क) तीन वैकल्पिक स्थितियों में (गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति की किसी संज्ञेय अपराध में संबंध होने की पूर्णतः वस्तुपरक स्थिति होने के अतिरिक्त प्रवर्तन में आती है :—

(i) इस प्रकार संबद्ध रहने का उचित परिवाद किया जा चुका है;

(ii) इस प्रकार संबद्ध रहने की विश्वसनीय इत्तिला प्राप्त हो चुकी है ;

(iii) इस प्रकार संबद्ध रहने का उचित संदेह विद्यमान है।

व्यवहार में, पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई अधिकतर गिरफ्तारियां तीसरे प्रवर्ग के अधीन आती हैं। इस संबंध में, इस बात की ओर संकेत करना संबद्ध होगा कि उचित संदेह का, न्यूनतम अपेक्षा के रूप में उल्लेख किया गया है। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय[3] के पूर्ण पीठ विनिश्चय के अनुसार, उचित संदेह, न्यूनतम अपेक्षा है। हम आगे उच्चतम न्यायालय के एक हाल के निर्णय[4] को निर्देशित करेंगे जहां गिरफ्तारी की शक्ति के विभिन्न पहलुओं का विशदीकरण किया गया है और कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं। यह स्पष्ट है कि "उचित" विशेषण एक वस्तुपरक तत्व पुरःस्थापित करता है और यह कि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने के पूर्व उचित संदेह की विद्यमानता आवश्यक है। चूंकि गिरफ्तारी किसी व्यक्ति के स्वातंत्र्य पर एक गंभीर हस्तक्षेप है, इसी लिए विधि ने किसी पुलिस अधिकारी को तभी गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग करने के लिए आदिष्ट किया है जब उचित संदेह के वस्तुपरक तत्व की पूर्ति हो गई हो। तथापि, वास्तविक व्यवहार में, विधि की इस सम्मानजनक आज्ञा का अनुसरण नहीं किया गया है क्योंकि पुलिस द्वारा मात्र संदेह पर अविवेकपूर्ण गिरफ्तारियां की जा रही हैं।

5.6 गिरफ्तारी की बाबत विवेक

इंगलैंड में, क्रिमिनल ला ऐक्ट, 1967 की धारा 2(4) द्वारा गिरफ्तारी की कांस्टेबल की शक्ति, इन शब्दों में अधिकथित की गई है :

1. शक्कम बिन हुसैन बनाम चांग फूक काम, (1969) 3 आल ई० आर० 1626 (पी०सी)।
2. होलगेट मोहम्मद बनाम ड्यूक (1984) आल ई० आर० 1054, 1056 (एच०एल)।
3. गुलाब चंद कन्नूलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1982) एम०पी० एल०जे० 7, 17, (एफ०बी)।
4. जोगिन्दर सिंह, पैरा 5, 7, इन्फरा।

> "जहां कोई कान्स्टेबल उचित कारण से यह संदेह करता है कि गिरफ्तारी योग्य अपराध हुआ है, वहां वह बिना वारण्ट के किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके वह, उचित कारण से दोषी होने का संदेह करता है, गिरफ्तार कर सकेगा।"

इंगलैंड में कुछ समय पूर्व यह प्रश्न उठा था कि क्या कांस्टेबल द्वारा ऐसा उचित सन्देह हो जाने पर, गिरफ्तारी, आज्ञापक है। इस प्रश्न पर विचार करते समय हाउस आफ लार्ड्स ने यह अभिनिर्धारित[1] किया कि जब पुलिस को उचित संदेह हो गया हो कि किसी व्यक्ति ने कोई गिरफ्तारी योग्य अपराध किया है, तब भी इसका अर्थ यह नहीं कि उसे अवश्य गिरफ्तार किया जाए। विवेकाधिकार का उचित रूप से प्रयोग किया जाना है और न्यायालय में उसके प्रयोग पर ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर प्रश्न नहीं किया जा सकता जिन्हें "वेन्सबरी सिद्धांत"[2] के नाम से जाना जाता है।[2] इन सिद्धांतों के अनुसार ऐसे व्यक्ति को, जिसे कानून द्वारा विवेकाधिकार प्रदत्त किया गया है, उसे—

(क) इसका प्रयोग सद्भावपूर्वक कानून के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए करना चाहिए ;

(ख) कानून के गलत अर्थान्वयन पर नहीं अड़ना चाहिए ;

(ग) विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए सुसंगत विषयों को गणना में लेना चाहिए ;

(घ) असंगत विषय स प्रभावित नहीं होना चाहिए।

5.7. उच्चतम न्यायालय का निर्णय

जोगिन्दर सिंह का मामला

गिरफ्तार करने के विवेक का विषय जोगिन्दर सिंह के मामले में[3], उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया, जो वर्तमान प्रयोजन के लिए अत्यधिक व्यावहारिक महत्व का है। उच्चतम न्यायालय ने उस मामले में पहले इस बात को नोट किया कि गिरफ्तारी की विधि एक ओर व्यक्ति के अधिकारों, स्वतंत्रताओं और विशेषाधिकारों तथा दूसरी ओर व्यष्टिक कर्तव्यों, आदि के बीच एक प्रकार का संतुलक है। व्यक्ति को, उस सामाजिक आवश्यकता के, कि अपराध का दमन किया जाएगा, विरुद्ध व्यक्ति के संरक्षण के लिए संतुलन करना है। इस बात का विशदीकरण करने के पश्चात् और राष्ट्रीय पुलिस आयोग द्वारा उसकी तीसरी रिपोर्ट (पृष्ठ 31 और 32) तथा दांडिक प्रक्रिया पर रायल कमीशन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर ध्यान देने के पश्चात् भारत के उच्चतम न्यायालय ने पुलिस द्वारा गिरफ्तारी की बाबत कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांतों का सुझाव दिया है। न्यायालय ने, दांडिक प्रक्रिया पर रायल कमीशन के निम्नलिखित सुझाव को भी निर्देशित किया है :

> "गिरफ्तारी के उपयोग को घटाने में मदद करने के लिए हम यहां एक ऐसी स्कीम को प्रारम्भ करने का भी प्रस्ताव करना चाहेंगे जिसका प्रयोग ओंटारियो में एक ऐसी सूचना जारी करने म समर्थ बनाने के लिए किया जाता है जिसे हाजिरी सूचना कहते हैं। उस प्रक्रिया का प्रयोग, गिरफ्तारी को अपनाए बिना, पुलिस थाने पर हाजिरी अभिप्राप्त करने के लिए किया जा सकता है, परन्तु यह तब जब कि गिरफ्तारी की शक्ति विद्यमान हो, उदाहरण के लिए, अंगुलि-छाप लेने या किसी पहचान परेड में भाग लेने के लिए इसका विस्तार, संदिग्ध व्यक्ति और मामले का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी दोनों के लिए सुविधाजनक समय पर साक्षात्कार के लिए हाजिरी पर भी किया जा सकता है ————।"

उच्चतम न्यायालय ने, दि पिपुल्स एण्ड क्रिमीनल इवीडेंस ऐक्ट, 1984 (यू० के०) की धारा 56(1) भी निर्दिष्ट की, जो निम्नवत् है :—

> "जहां किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया है और किसी पुलिस थाने या अन्य परिसरों में अभिरक्षा में रखा जा रहा है, वहां यदि वह ऐसी प्रार्थना करता है तो अपने मित्र या नातेदार या अन्य व्यक्ति को, जो उससे परिचित है या जिससे उसके कल्याण में रुचि लेने की संभावना है यथा-

1. होलगेट मोहम्मद बनाम ड्यूक (1984) । आल ई० आर० 1054, 1059, 1060 (एच० एल०)।
2. एसोसिएटेड प्राविंसियल पिक्चर हाउस लि० बनाम वेंसबरी कार्पोरेशन (1947) 2 आल ई० आर० 680 (सी०ए०)।
3. जोगिन्दर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) 3 जे०टी० (एस०सी) 423।

भी हो, जो व्यवहार्य हो सिवाय उस सीमा तक विलंब के, जितनी इस प्रयोजन द्वारा अनुज्ञात है, यह बताने का हकदार होगा कि उसे गिरफ्तार किया गया है और वहां निरुद्ध रखा जा रहा है।"

5.8. उच्चतम न्यायालय द्वारा सुझाए गए मार्गदर्शी सिद्धांत

जोगिन्दर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1944) 3 जे० टी० (एस० सी) 423, 430 के मामले में जिसे हमने पूर्ववर्ती पैरा में निर्दिष्ट किया है, यह स्पष्ट करने का अध्यवसाय किया गया है कि गिरफ्तारी मात्र इस कारण से नहीं की जा सकती कि पुलिस अधिकारी के लिए ऐसा करना विधिपूर्ण है। शक्ति की विद्यमानता एक बात है, जब कि शक्ति का प्रयोग बिल्कुल भिन्न बात है। पुलिस अधिकारी को, उसकी ऐसा करने की शक्ति के अलावा, गिरफ्तारी का औचित्य बताने में समर्थ होना चाहिए। गिरफ्तारी और निरोध किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और आत्माभिमान को अननुमेय अपहानि कारित कर सकते हैं। न्यायालय ने इस निमित्त निम्नलिखित संप्रेक्षण किए हैं :

"कोई गिरफ्तारी, किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध किए जाने के अभिकथन मात्र पर नैत्यिक रीति से नहीं की जा सकती। पुलिस अधिकारी के लिए, किसी नागरिक के संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण के हित में और संभवतः उसके अपने हित में यह प्रज्ञायुक्त होगा कि किसी परिवाद की वास्तविकता और सद्भाविकता की बाबत कुछ अन्वेषण करने के पश्चात् किसी उचित समाधान पर पहुंचे बिना और व्यक्ति की जटिलता तथा गिरफ्तारी के प्रभाव की आवश्यकता, इन दोनों पर भी उचित विश्वास हुए बिना, कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से इंकार करना गंभीर विषय है। पुलिस आयोग की सिफारिशें केवल निजी स्वातंत्र्य और स्वतंत्रता के मूल अधिकार की संवैधानिक प्रतिबद्धता को प्रकाश में लाती है। कोई व्यक्ति किसी अपराध में जटिलता के संदेह मात्र पर गिरफ्तारी के लिए दायी नहीं है। गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की राय में कुछ युक्तियुक्त औचित्य होना आवश्यक है कि ऐसी गिरफ्तारी आवश्यक और औचित्यपूर्ण है। जघन्य अपराधों में के सिवाय, यदि पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को पुलिस थाने पर हाजिर होने और अनुज्ञा के बिना थाना न छोड़ने के लिए सूचना जारी करें, तो गिरफ्तारी से बचा जा सकेगा।"

उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 26 में अपेक्षाएं निम्नवत् अधिकथित की हैं :

"ये अधिकार, संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(1) में अंतर्निहित हैं और इन्हें मान्यता देना तथा सतर्कतापूर्वक संरक्षित किया जाना अपेक्षित है। इन मूल अधिकारों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए हम निम्नलिखित अपेक्षाएं जारी करते हैं :

1. अभिरक्षा में रखा जा रहा कोई गिरफ्तार किया गया व्यक्ति, यदि वह ऐसी प्रार्थना करता है तो अपने एक मित्र, नातेदार या अन्य व्यक्ति को, जो उसका परिचित है या जिससे उसके कल्याण में रुचि लेने की संभावना है, जहां तक व्यवहार्य है, यह बताने का हकदार है कि वह, गिरफ्तार किया जा चुका है और उसे कहां पर निरुद्ध रखा जा रहा है।
2. पुलिस अधिकारी, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, जब उसे पुलिस थाने पर लाया जाता है, इस अधिकार की सूचना देगा।
3. डायरी में इस आशय की प्रविष्टि की जानी अपेक्षित होगी कि गिरफ्तारी की सूचना किसको दी गई थी। शक्ति से ये संरक्षण, अनुच्छेद 21 और 22 (1) से निःसृत समझे जाएंगे"।

5.9. मजिस्ट्रेट का कर्तव्य

इसी निर्णय (जोगिन्दर सिंह) के पैरा 27 में, उच्चतम न्यायलय ने निदेश किया कि यह उस मजिस्ट्रेट का, जिसके समक्ष गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, पेश किया गया है, कर्तव्य होगा कि वह स्वयं समाधान कर ले कि पूर्ववर्ती पैरा में उपवर्णित अपेक्षाएं पूरी कर दी गई हैं। निर्णय के पैरा 28 के अनुसार उपर्युक्त अपेक्षाओं का तब तक अनुसरण किया जाए जब तक कि इस निमित्त विधिक उपबंध नहीं कर दिए

जाते तथा यह और स्पष्ट किया गया था कि ये अपेक्षाएं विभिन्न पुलिस मैनुअलों में पाए जाने वाले गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के अधिकारों के अलावा हैं।

5.10 गिरफ्तारी के लिए कारण

उच्चतम न्यायलय ने जोगिन्दर सिंह वाले मामले में, पैरा 29, यह स्पष्ट करते हुए कि ये अपेक्षाएं, संपूर्ण नहीं है, भारत में सभी राज्यों के पुलिस महानिदेशकों को, इन अपेक्षाओं के सम्यक् अनुपालन की अपेक्षा करते हुए आवश्यक निर्देशों को जारी करने का निदेश दिया। "इसके अतिरिक्त, विभागीय अनुदेश भी जारी किए जाने हैं कि कोई पुलिस अधिकारी कोई गिरफ्तारी करते समय ऐसी गिरफ्तारी करने के कारण भी केस डायरी में अभिलिखित करेगा।"

5.11 शीला बार्से के मामले में निर्णय

इस प्रक्रम पर, हम शीला बार्से के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय[1] के प्रति भी निर्देश कर सकते हैं, जिसमें साधारणतः गिरफ्तारी और स्त्रियों की गिरफ्तारी, दोनों की बाबत कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांत अधिकथित किए गए थे। सुसंगत मार्गदर्शी सिद्धांत निम्नवत् हैं :—

(1) उचित रूप से अच्छी संस्थितियों में चार या पांच पुलिस हवालातों का चयन करना चाहिए और केवल वहीं पर संदिग्ध स्त्रियों को रखा जाना चाहिए तथा उनकी सुरक्षा भी स्त्री सिपाहियों द्वारा की जानी चाहिए।

(2) संदिग्धों स्त्रियों को ऐसी हवालात में नहीं रखना चाहिए जहां पुरुष संदिग्ध निरुद्ध किए जाते हैं।

(3) संदिग्ध स्त्रियों से पूछताछ, केवल स्त्री पुलिस अधिकारी सिपाहियों की उपस्थिति में की जानी चाहिए।

(4) जब कभी किसी संदिग्ध को पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया और पुलिस हवालात में लाया जाता है तो पुलिस तत्काल तथ्य की जानकारी निकटतम विधिक सहायता समिति को देगी।

(5) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उनकी शिकायत सुनने का अवसर देने और पुलिस हवालात में उनकी दशा सुनिश्चित करने की दृष्टि से नगर के भीतर पुलिस हवालातों का आवधिक रूप से अचानक निरीक्षण किया जाना चाहिए।

(6) जैसे ही कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है, पुलिस को तत्काल उससे उसके किसी ऐसे नातेदार या मित्र का नाम अभिप्राप्त करना चाहिए, जिसको वह अपनी गिरफ्तारी के बारे में सूचित करना चाहे और पुलिस को ऐसे नातेदार या मित्र से संपर्क करना और उसे गिरफ्तारी के बारे में सूचित करना चाहिए।

(7) वह मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष गिरफ्तार किया गया व्यक्ति पेश किया जाता है, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यह पूछेगा कि क्या उसे पुलिस अभिरक्षा में यातना या दुर्व्यवहार का कोई परिवाद है।

5.12 काउन्सेल की उपस्थिति

पुलिस द्वारा किसी अभियुक्त व्यक्ति से पूछताछ करने के समय, काउन्सेल की उपस्थिति के विषय पर अनेक देशों में और विशेष रूप से अभियुक्त से, यदि कोई है, उसकी उपस्थिति पर ध्यान दिया गया है :

"..... हम यह अधिकथित नहीं करते कि पुलिस को अधिवक्ता प्रणाली की सेवाएं प्राप्त करनी चाहिएं, यह एक दुष्प्रथा है जो अन्य बुराइयों को जन्म देती है। किन्तु हमारा आशय मात्र यह है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति, जब उसकी परीक्षा की जा रही हो तो तब अपने पास अपने वकील के रहने की इच्छा व्यक्त करता है तो इस सुविधा से, किसी ऐसी गंभीर निन्दा के प्रकट हुए बिना कि गोपनीयता में अस्वैच्छिक आत्मापराध प्राप्त किया जाता है और इच्छा का प्रपीड़न करना ही उद्देश्य था; इंकार नहीं किया जाएगा....."

---

1. शीला बार्से बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए०आई०आर० 1983 एस सी 378.
2. नन्दिनी सत्पथी बनाम बिहार राज्य 1978 क्रि०ला०ज० 968.

यह प्रतीत होगा कि यदि कोई अत्यधिक विस्तृत रूप से संवैधानिक पक्ष की जांच करना चाहे, तो **संविधान** के कम से कम 3 अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 20, 21 और 22 इससे संगत होंगे। यदि संवैधानिकेतर पक्ष को ही गणना में लिया जाए तो यह प्रतीत होगा कि यदि पूछताछ के दौरान या सहबद्ध व्यवहारों के दुष्प्रयोगों को रोकने के लिए गंभीर प्रयास किया जाता है तो गिरफ्तार व्यक्ति को यह मांग करने का हकदार बनाने के लिए कम से कम यह उपबंध होना चाहिए कि पूछताछ उसके चुनाव के काउन्सेल या किसी कुटुम्ब-मित्र की उपस्थिति में की जानी चाहिए। इस प्रक्रम पर राज्य द्वारा नियुक्त किए गए काउन्सेल की उपस्थिति की अपेक्षा अतः स्थापित करने की जरूरत नहीं है किन्तु जैसा कि हमने पूर्ववर्ती वाक्य में कहा है, उसे विधि में सम्मिलित किए जाने की जरूरत है। यहां हमें यह उल्लेख करना चाहिए कि हमारी प्रश्नावली (क्रम सं० 2) की कुछ अनुक्रियाओं में काउन्सेल की उपस्थिति का पक्ष लिया गया है जब कि काफी बड़ी संख्या में (क्रम सं० 2) मे विरोध किया गया है।

5.13 विधि आयोग की रिपोर्ट सं० 135

हम इस स्थल पर विनिर्दिष्टतः इस बात का उल्लेख करना चाहेंगे कि भारत के विधि आयोग ने **अभिरक्षा में स्त्री** संबंधी अपनी 135वीं रिपोर्ट में (1989) अभिरक्षा में स्त्रियों की उत्पीड़न से संरक्षा और संभाव्य सीमा तक उनके संरक्षण के लिए विस्तृत उपबंधों की सिफारिश की थी। आयोग ने, इस प्रयोजन के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता में एक विनिर्दिष्ट और पृथक् अध्याय के अन्तः स्थापन की सिफारिश की थी ताकि संबंधित अधिकारी और साथ ही महिलाओं के संगठन अभिरक्षा में स्त्रियों और उनके नातेदार, अधिक प्रयास किए बिना, ऐसी स्त्रियों के अधिकारों और विभिन्न अधिकारियों की बाध्यताओं का स्वयं पता लगा सकें और उनकी सूचना पा सकें। स्त्रियों की गिरफ्तारी उनसे पूछताछ और उनकी अभिरक्षा आदि से संबंधित प्रस्तावित पृथक् अध्याय का एक प्रारूप रिपोर्ट के साथ संलग्न था। वर्तमान प्रक्रम पर, केवल उन्हीं सिफारिशों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा जो गिरफ्तारी और पूछताछ से संबंधित हैं। ये सिफारिशें निम्नवत् हैं :–

(1) किसी स्त्री का गिरफ्तार किया जाना अपेक्षित होने की दशा में संबद्ध पुलिस अधिकारी, वस्तुतः स्त्री के शरीर का स्पर्श नहीं करेगा और अभिरक्षा में उसके हो जाने की उपधारणा करेगा। यह सिफारिश इस लिए की जा रही है कि संबद्ध स्त्री की गरिमा बनी रहे।

(2) सामान्यतः किसी स्त्री को सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व गिरफ्तार नहीं किया जाएगा। आपवादिक मामलों में इन घंटों के दौरान गिरफ्तारी के लिए—

(i) अव्यवहित वरिष्ठ अधिकारी की पूर्व अनुज्ञा अभिप्राप्त की जाएगी, या

(ii) यदि मामला अत्यंत आवश्यकता का है तो, गिरफ्तारी के पश्चात्, सकारण रिपोर्ट अव्यवहित वरिष्ठ अधिकारी को और मजिस्ट्रेट को की जाएगी।

(3) जहां कहीं किसी स्त्री की चिकित्सीय रूप से परीक्षा की जाती है, वहां किसी महिला चिकित्सा व्यवसायी के पर्यवेक्षण के अधीन शालीनता को कठोरता पूर्वक ध्यान में रखकर कराई जाएगी।

(4) संबद्ध स्त्री को "अभिलेख पर कोई ऐसे तथ्य लाने के लिए जिनसे यह पता चल सके कि गिरफ्तारी के पश्चात् उसके विरुद्ध कोई अपराध किया गया है" चिकित्सीय रूप से परीक्षा करवाने के उसके अधिकार के बारे में सूचित किया जाएगा।

(5) चिकित्सीय परीक्षा की रिपोर्ट की एक प्रति उस स्त्री को दी जाएगी।

(6) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अधीन किसी स्त्री से, उसके निवास गृह से भिन्न किसी स्थल पर पूछताछ के लिए हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी और संहिता की धारा 160 का इस प्रयोजन के लिए संशोधन किया जाना चाहिए।

(7) जब किसी स्त्री का बयान अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किया जाता है, तब उस स्त्री का कोई नातेदार या भिन्न या स्त्रियों के कल्याण में हितबद्ध किसी संस्था के प्राधिकृत प्रतिनिधि को उपस्थित बने रहने की अनुमति दी जाएगी।

5.14 न्यायिक अधिकारी

इस प्रक्रम पर उच्चतम न्यायालय के एक अन्य निर्णय[1] का उल्लेख करना उचित होगा जिसमें पुलिस अधिकारियों या न्यायिक अधिकारियों द्वारा अनुसरण किए जाने के लिए कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांत का सुझाव दिया गया है। मार्गदर्शी सिद्धांत निम्नवत् हैं:–

(क) यदि किसी न्यायिक अधिकारी को किसी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाना है तो ऐसा, यथास्थिति, जिला न्यायाधीश, या उच्च न्यायालय को सूचना के अधीन किया जाना चाहिए।

(ख) यदि तथ्य और परिस्थितियां, अधीनस्थ न्यायपालिका के किसी न्यायिक अधिकारी की तात्कालिक गिरफ्तारी आवश्यक बना देती है तो तकनीकी या औपचारिक गिरफ्तारी, की जा सकेगी।

(ग) ऐसी गिरफ्तारी के तथ्य तत्काल संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश, तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्याय मूर्ति को संसूचित किए जाएंगे।

(घ) इस प्रकार गिरफ्तार किए गए न्यायिक अधिकारी को संबद्ध जिले के जिला और सेशन न्यायाधीश के, यदि उपलभ्य है, पूर्व आदेश या निर्देशों के बिना, पुलिस थाने नहीं ले जाया जाएगा।

(ङ) किसी न्यायिक अधिकारी को हथकड़ी नहीं लगाई जानी चाहिए। तथापि, यदि गिरफ्तारी का हिंसात्मक प्रतिरोध किया जाता है या यदि जीवन और अंगों के खतरे को दूर करने के लिए शारीरिक गिरफ्तारी करने की आसान्न आवश्यकता है तो प्रतिरोध करने वाले व्यक्ति को वश में किया और उसको हथकड़ी लगाई जा सकती है। ऐसे मामलों में, संबद्ध जिला और सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को भी तत्काल रिपोर्ट पेश की जाएगी। किन्तु न्यायिक अधिकारी की शारीरिक, गिरफ्तारी करने और हथकड़ी लगाने की आवश्यकता साबित करने का भार पुलिस पर होगा, और यदि यह सिद्ध हो जाता है कि न्यायिक अधिकारी की शारीरिक गिरफ्तारी और उसको हथकड़ी लगाना औचित्यपूर्ण नहीं था तो ऐसी गिरफ्तारी और हथकड़ी लगाने या उसके लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी, कदाचार के दोषी होंगे और ऐसे प्रतिकर और/या नुकसानी के लिए, जो उच्च न्यायालय द्वारा सारतः अवधारित की जाए, भी व्यक्तिगत रूप से दायी होंगे।

5.15 संसद् सदस्य

हम इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहेंगे कि संसद सदस्यों (और राज्य विधायिकाओं के सदस्यों) की गिरफ्तारी का प्रश्न भी कुछ महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिपाटी यह है कि किसी दाण्डिक आरोप पर ऐसे सदस्य को गिरफ्तार करने वाला पुलिस अधिकारी, तुरन्त उस विधायिका के पीठासीन अधिकारी को तार द्वारा, और डाक द्वारा भी सूचना देगा। जोगिन्दर सिंह के मामले में उच्चतम न्यायलय ने निम्नलिखित मानदंड का कठोरतापूर्वक पालन करने की आवश्यकता पर जोर दिया था:—

"लोक सभा में कारबार की प्रक्रिया और संचालन नियमावली के नियम 229 के अधीन जब कोई सदस्य, दांडिक आरोप पर गिरफ्तार किया जाता है या किसी कार्यपालक प्राधिकारी अथवा मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन निरुद्ध रखा जाता है तब कार्यपालक प्राधिकारी को ऐसे तथ्य की सूचना बिना विलम्ब किए स्पीकार कर देनी चाहिए। जैसे ही कोई गिरफ्तारी, निरोध, दोषसिद्धि या निर्मुक्ति होती है, सूचना निरपवाद रूप से स्पीकार लोक सभा/राज्य सभा को भेजने के साथ-साथ संबद्ध सरकार को भेजी जानी चाहिए। यह सूचना, तार से और डाक द्वारा भी भेजी जानी चाहिए और सूचना देने में अवकाश, आदि के आधार पर विलंब नहीं किया जाना चाहिए।"

---

1. दिल्ली ज्युडिसियल सर्विस एसोसियेशन बनाम गुजरात राज्य (1991) 4 एस० सी० सी० 406.
2. जोगिन्द्र सिंह बनाम पंजाब राज्य (1944) 3 जे टी (एस सी) 423, 430, 431.

5.16 अपनाया जाने वाला कारक—विधि में संशोधन

हमने उन विभिन्न उपायों पर, जो विशिष्टतः दुष्प्रक्रियाओं को रोकने के क्रम में, अपनाए जाने चाहिएं, ध्यान केन्द्रित करने की दृष्टि से इस अध्याय में गिरफ्तारी से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री एक साथ संकलित करने का प्रयत्न किया है। हम यह जानते हैं कि विधान में सभी बातें रखना शक्य नहीं हो सकता है। पर कार्रवाई करने की एक संभाव्य युक्ति, दंड प्रक्रिया संहिता में, वे सभी प्रस्ताव जिन्हें अत्यधिक रूप से संहिताबद्ध किया जा सकता है, 50क, 50ख, 50ग इत्यादि अनेक धाराओं को अन्तःस्थापित करना होगा। यह आवश्यक है कि ऐसे प्रमुख प्रस्तावों को जो अभिरक्षा में यातना के निवारण से सीधे सुसंगति रखते हैं, विधायी रूप दिया जाना चाहिए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर, हम यह सिफारिश करेंगे कि सारतः निम्नलिखित प्रस्तावों का समावेश करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 50 के पश्चात् एक नई धारा या धाराएं (जो भी सुविधाजनक हो) अंतःस्थापित की जानी चाहिए :—

(1) जब कभी कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी किया जाता है तो उस पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तारी की सूचना (निरोध के स्थान के बारे में सूचना के साथ-साथ) निम्नलिखित व्यक्तियों को तत्काल दी जाएगी :—

(क) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को ज्ञात उसका कोई नातेदार या भिन्न या अन्य व्यक्ति जो भी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति द्वारा नामनिर्देशित किया जाए ;

(ख) ऊपर (क) में असफल होने पर स्थानीय विधिक सहायता समिति।

(2) ऐसी सूचना तार या टेलीफोन द्वारा[1] जो भी सुविधाजनक हो, भेजी जाएगी और यह तथ्य कि एसी सूचना भेज दी गई है, पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के हस्ताक्षर के अधीन अभिलिखित की जाएगी।

(3) पुलिस अधिकारी, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का, उसके द्वारा तथा उस स्थान के, जहां पर गिरफ्तारी की गई है, दो साक्षियों द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित अभिरक्षा मेमो और शरीर प्राप्ति रसीद तैयार करेगा, और उसे गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के नातेदार को यदि वह गिरफ्तारी के समय उपस्थित है परिदत्त करेगा, अथवा उसकी अनुपस्थिति में उसे गिरफ्तारी की सूचना के साथ ऊपर 1(क) में उल्लिखित व्यक्ति के पास भेजेगा।

(4) ऊपर (3) में निर्दिष्ट अभिरक्षा मेमो में निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी :—

(i) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का नाम और उसके पिता या पति का नाम;

(ii) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का पता ;

(iii) गिरफ्तारी की तारीख, समय और स्थान ;

(iv) वह अपराध जिसके लिए गिरफ्तारी की गई है ;

(v) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से बरामद की गई और गिरफ्तारी के समय भार साधन में ली गई संपत्ति, यदि कोई है; और

(vi) कोई शारीरिक क्षति, जो गिरफ्तारी के समय दिखलाई पड़ सकती है।

(5) किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की पूछताछ के दौरान, उसके विधिक व्यवसायी को उपस्थित बने रहने के लिए अनुज्ञा दी जाएगी।

(6) पुलिस अधिकारी, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को, जैसे ही उसे पुलिस थाने पर लाया जाता है, उस धारा की विषय वस्तु की सूचना देगा और पुलिस डायरी में निम्नलिखित तथ्यों के बारे में प्रविष्टि करेगा :—

(क) वह व्यक्ति, जिस गिरफ्तारी की सूचना दी गई थी ;

(ख) यह तथ्य, कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस धारा की विषय वस्तु की सूचना दे दी गई थी, और

(ग) यह तथ्य कि इस धारा द्वारा यथा अपेक्षित अभिरक्षा मेमो तैयार किया गया था।

1. इस समय, इस बाबत कुछ अल्पदृश्यता है। कृपया दिल्ली पुलिस के विश्वास पर रिपोर्ट देखें दि स्टेटसमैन, 13 अप्रैल, 1994, पृष्ठ 9।

5.17 स्त्रियों की गिरफ्तारी : सिफारिशें

ऊपर निर्दिष्ट भारत के विधि आयोग की 135वीं रिपोर्ट (अभिरक्षा में स्त्रियां)[1] में की गई विभिन्न सिफारिशों में सिफारिश सं० 1 और 2, गिरफ्तारी से सीधे सुसंगत है और हम सिफारिश करते हैं कि उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता में, समुचित स्थान पर, शामिल किया जाना चाहिए।

5.18 गिरफ्तारी की शक्ति : सिफारिशें

अब हम प्रमुख प्रश्न अर्थात् उस दिशा पर विचार करेंगे जिसमें संज्ञेय अपराधों की बाबत पुलिस को प्रदत्त गिरफ्तारी की शक्ति का, शक्ति के दुरुपयोग की संभावना को कम करने के क्रम में संशोधन किए जाने की आवश्यकता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41(1)(क), जिसमें तात्विक उपबंध अंतर्विष्ट है, निम्नवत् है :—

"41. (1) कोई पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारण्ट के बिना किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है :—

(क) जो किसी संज्ञेय अपराध से संबद्ध रह चुका है या जिसके विरुद्ध इस बारे में उचित परिवाद किया जा चुका है, विश्वसनीय इत्तिला प्राप्त हो चुकी है या उचित संदेह विद्यमान है कि वह ऐसे संबद्ध रह चुका है।"

एक यह भ्रम विद्यमान प्रतीत होता है कि यदि गिरफ्तार करने की शक्ति है, तो उस शक्ति का प्रयोग अवश्य किया जाए। वे न्यायिक विनिश्चय, जिन्हें हमने इस अध्याय[2] के सुसंगत पैराओं में निर्देशित किया है, इस बात की ओर गंभीरतापूर्वक संकेत करते हैं कि विधिक स्थिति ऐसी नहीं है। यह शक्ति, प्रशासनिक विधि के सामान्य सिद्धान्तों के अधीन रहते हुए है। इसके प्रयोग के लिए अधिकारिता, प्रत्येक मामले में दिखलाई जाए। विधि की अपेक्षा मात्र किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने का परिवाद, उसकी इत्तिला या संदेह नहीं है, अपितु इस एक और शर्त का समाधान भी है कि जो संदिग्ध अपराध में गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति की अंतर्ग्रस्तता प्रदर्शित करती है। ये सभी प्रतिपादनाएं धारा 21 की स्कीम में अव्यक्त हैं, विशेष रूप से तब जब यह धारा साधारण विधि की पृष्ठभूमि के, जिसमें प्रशासनिक विधि और कानूनी विवक्षा के नियम भी है, परिप्रेक्ष्य में देखी जाती है। इस प्रकार यह तथ्य कि इसमें एक विवेकाधिकार है और कर्तव्य नहीं, 'सकता है' शब्द द्वारा पर्याप्त रूप से उपदर्शित है यह तथ्य कि विशिष्ट व्यक्ति की अंतर्ग्रस्तता स्थापित की जानी है, भी "जिसके विरुद्ध" और "वह ऐसे संबद्ध रह चुका है" शब्दों द्वारा, जो धारा 41 (1) (क) में आते हैं पर्याप्त रूप से उपदर्शित है।

5.19 संशोधन की आवश्यकता

स्पष्ट शब्दों के होते हुए भी संशोधन आवश्यक है क्यों कि अनिवार्य अपेक्षाएं कई बार, या तो जानबूझ कर या असावधानीवश अनदेखी कर दी जाती हैं। कार्य की अधिकता भी, इन सभी अपेक्षाओं को पूरा करने की आवश्यकता पर पूर्ण और समुचित ध्यान दिए जाने से प्रवारित कर सकती है, यद्यपि वह अननुपालन के लिए माफी नहीं हो सकती है। इस स्थिति में हम इस प्रश्न पर विचार करते समय कि क्या इन अनिवार्य विशेषताओं को प्रकाश में लाने के लिए संशोधन आवश्यक है। एक द्विविधा में पड़ जाते हैं। दूसरी ओर, एक ऐसा उपबंध, जो व्यापक रूप से स्वातंत्र्य से संबद्ध है, उतना संक्षिप्त होना चाहिए जितना संभव हो, और यह तर्क नहीं किया जा सकता कि उपबंध बोझिल प्रतीत हो, ऐसा करने के मूल्य पर भी, कुछ औचित्य के साथ, धारा में वे सभी अपेक्षाएं अधिक सुस्पष्ट रूप से रखने की छूट लेना चाहेगा जो दुर्भाग्यवश कभी-कभी अनदेखी कर दी जाती हैं। इसके विरुद्ध यह भी एक विचार है कि ऐसे विषय को, जो पहले से ही स्पष्ट है (यदि धारा को सतर्कता पूर्वक पढ़ा जाता है) जोड़ा नहीं जा सकता और ऐसा परिवर्धन, विधायी प्रारूपण की आम प्रक्रिया के प्रतिकूल है। हम अंततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संतुलन पर "संशोधन" की सिफारिश करना अधिमान्य होगा। विद्यमान स्थिति ऐसी है जहां संक्षिप्तता पर स्पष्टता का अधिमान है, सिद्धांत और ब्यौरे साथ-साथ होने आवश्यक हैं, रूप की भव्यता, संरचनात्मक जटिलता से ऊपर होनी चाहिए और उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिनका महत्व, प्रारूपण के सामान्य क्षेत्रों से पारभाषी है, भाषा के प्राचुर्य को क्षम्य मानना होगा।

1. पैरा 5.13, पूर्वोद्धृत।
2. पैरा 5.7, 5.8., पूर्वोद्धृत।

5.20 धारा 41 के संशोधन की सिफारिश

तदनुसार, हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 में उपधारा (1) के पश्चात् निम्नलिखित नई उपधारा (1क) अंत:स्थापित की जानी चाहिए :

> "41. (1क) इस धारा की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी का निम्नलिखित विषयों के संबंध में उचित रूप से समाधान होना चाहिए और समाधान उसे अभिलिखित करना चाहिए :—
>
> (क) उस खंड में निर्दिष्ट परिवाद, इत्तिला या संदेह केवल किए गए किसी संज्ञेय अपराध की बाबत ही नहीं है, अपितु उस अपराध में गिरफ्तार किए जा रहे व्यक्ति की संलग्नता के बारे में भी है;
>
> (ख) गिरफ्तारी, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति की गतिविधि को इस प्रकार रोक में लाने के लिए आवश्यक है कि जनता में सुरक्षा की भावना बढ़ाई जा सके या गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को विधि की प्रक्रिया के अपवंचन से रोका जा सके या उसे ऐसे ही अपराध करने या साधारणत: हिंसापूर्ण व्यवहार में संलग्न होने से प्रवारित किया जा सके"।

हमें इस प्रक्रम पर यह उल्लेख करना है कि गिरफ्तारी की अनिर्बंधित शक्ति के बारे में हमारी प्रश्नावली के कुछ उत्तर कुछ निर्बन्धनों के पक्ष में हैं (क्रम सं० 8) वस्तुत: एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने एक सेमिनार में यह विचार व्यक्त किया था।

जोगिन्दर सिंह के मामले में[1], पुलिस द्वारा गिरफ्तारी के स्थान पर हाजिरी की सूचना प्रतिस्थापित करने की संभावना के बारे में अति सहायक सुझाव दिया गया है। यह वास्तव में समन की प्रकृति का है किन्तु इस सीमा तक एक नया विचार है कि भारत में विद्यमान विधि के अधीन जब कि किसी अभियुक्त व्यक्ति को, न्यायालय द्वारा समन जारी किया जा सकता है, पुलिस किसी अभियुक्त व्यक्ति को समन नहीं जारी करती है। ऐसे किसी उपबंध के अंत:स्थापन के लिए औचित्य के बहुत से कारण हैं। निःसंदेह प्रमुख कारण निजी स्वतंत्रता का संरक्षण है जो कतिपय मामलों में लोक कल्याण के विचारों का बलिदान किए बिना प्राप्त की जा सकती है। इस युक्ति का प्रतिस्थापन स्वयमेव अभिरक्षान्तर्गत अपराधों को समाप्त करेगा या कम से कम घटाएगा ही। इसलिए हम यह सिफारिश करेंगे कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में, निम्नलिखित प्रारूप के अनुसार एक नई धारा अंत: स्थापित की जानी चाहिए :—

> "41क. **हाजिरी की सूचना**—(1) जहां मामला धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन आता है, वहां पुलिस अधिकारी, संबद्ध व्यक्ति को गिरफ्तार करने के बजाय, उसे उस पुलिस अधिकारी के समक्ष जो सूचना जारी करता है, या ऐसे अन्य स्थान पर जो सूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, हाजिर होने की और धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट अपराध के अन्वेषण में पुलिस अधिकारी के साथ सहयोग करने की अपेक्षा करते हुए एक हाजिरी की सूचना जारी कर सकेगा।
>
> (2) जहां ऐसी कोई सूचना किसी व्यक्ति को जारी की जाती है, वहां उस सूचना की शर्तों का अनुपालन करना उस व्यक्ति का कर्तव्य होगा।
>
> (3) जहां ऐसा व्यक्ति, सूचना का अनुपालन करता है और करता रहता है, वहां वह सूचना में निर्दिष्ट अपराध की बाबत तब तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा जब तक कि अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से पुलिस अधिकारी की यह राय न हो कि उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए।
>
> (4) जहां ऐसा व्यक्ति किसी भी समय सूचना की शर्तों का अनुपालन करने में असफल होता है, वहां पुलिस अधिकारी के लिए, उसे सूचना में उल्लिखित अपराध के लिए ऐसे आदेशों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किए गए हों, गिरफ्तार करना विधिपूर्ण होगा।"

1. जोगिन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जे टी (1944) 3 एस० सी० 423, 430, 431।

5.22 मजिस्ट्रेट का कर्तव्य : सिफारिश

इस क्रम में कि इस अध्याय में उपवर्णित विभिन्न रक्षोपायों का अनुपालन हो, यह वांछनीय है कि किसी स्वतंत्र अभिकरण द्वारा पुलिस के निरीक्षण का एक प्रकार का पर्यवेक्षण होना चाहिए वर्तमान ढांचे में, उस संबंध में एक पृथक अभिकरण के लिए उपबंध करना संभव नहीं हो सकेगा, किन्तु इस प्रयोजन के लिए विद्यमान तंत्र का उपयोग कर पाना संभव होना चाहिए। दोनों, संविधान के अनुच्छेद 22 में यथा अधिकथित संवैधानिक अपेक्षाओं के अधीन और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 56 के अधीन गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना है। संहिता की धारा 56 और 57 को संयुक्त प्रवर्तन के आधार पर, मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश किया जाना आवश्यक है।[1] किन्तु ऐसे मामलों में जहां अनौपचारिक गिरफ्तारियां की जाती हैं अभियुक्त व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं पेश किया जाता, इसके बजाय उसे पूछताछ के लिए पुलिस अभिरक्षा में रखा जाता है और उसकी गिरफ्तारी, संस्वीकृति के लिए या आ आयुद्ध अथवा माल की बरामदगी के लिए तथ्यों को बताने के पश्चात् ही दिखलाई जाती है। इस दुष्प्रथा के निवारण के लिए, उस मजिस्ट्रेट को जिसके समक्ष अभियुक्त व्यक्ति को पेश किया जाता है, अभियुक्त व्यक्ति से उसकी गिरफ्तारी का समय और तारीख पूछना और उसे अभिलिखित करना चाहिए। हमारी सिफारिश यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता में निम्नलिखित प्रारूप के अनुसार एक नई धारा 57क अंत:स्थापित की जानी चाहिए :—

> "57क. **कतिपय तथ्यों को सत्यापित करना मजिस्ट्रेट का कर्तव्य**—जब बिना वारंट के गिरफ्तार किया गया कोई व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तब वह मजिस्ट्रेट, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से की जाने वाली जांच द्वारा अपना यह समाधान करेगा कि (गिरफ्तारी, गिरफ्तारी के अधिकारों की संसूचना, आदि के संबंध में रक्षोपायों से संबंधित धाराएं प्रविष्ट की जानी हैं) धारा 56 और 57 के उपबंधों का अनुपालन किया गया है और वह गिरफ्तारी के समय तथा तारीख की भी पृच्छा करेगा और उसे अभिलिखित करेगा।"

5.23 अन्य मामले

इस पैरा के ठीक पूर्ववर्ती कुछ पैराओं में हमने जो सिफारिशें की हैं, उनमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मामलों पर विचार किया गया है जिन पर विधायी उपबंध अतिशीघ्र वांछित हैं। इस समय हम कुछ ऐसे विषयों की बाबत, जिन पर इस अध्याय में कुछ चर्चा की गई है सिफारिशें नहीं कर रहे हैं क्योंकि वे विधायी सूत्रीकरण में आसानी से स्वयं समाहित नहीं हो सकते हैं। तथापि पुलिस मैनुअल में उन्हें अतिशीघ्र संहिताबद्ध करना आवश्यक है। हम यहां ऐसे विशेषित विषयों को निर्दिष्ट कर रहे हैं जो न्यायिक अधिकारियों की गिरफ्तारी और संसद् सदस्यों की गिरफ्तारी से संबद्ध हैं। इस तथ्य का, कि हम इस रिपोर्ट में इन विषयों पर विधायी संशोधनों का सुझाव नहीं दे रहे हैं, यह अर्थ नहीं है कि वे व्यापक महत्व के नहीं हैं। यदि ऐसी समस्याएं पुन: होती हैं तो कानूनी उपबंधों की सिफारिश करके उन पर ध्यान देना आवश्यक हो सकेगा।

जहां तक भारत के विधि आयोग की 135 वीं रिपोर्ट (अभिरक्षा में स्त्रियां) में विचार किए गए विषयों का संबंध है, हमने वर्तमान रिपोर्ट के संदर्भ में गिरफ्तारी की विषयवस्तु से सीधे संगत विषयों पर[2] इस अध्याय में पहले ही सिफारिशें की हैं। किन्तु उस रिपोर्ट में की गई शेष सिफारिशों को भी कार्यान्वित करना आवश्यक है। हम पाते हैं कि संहिता का संशोधन करने के लिए हाल में (1 मई, 1994) को पुर:स्थापित विधेयक में 135वीं रिपोर्ट में विचार किए गए विषयों में से एक या दो विषयों को कार्यान्वित किया गया है। किन्तु उस रिपोर्ट की अन्य अनेक सिफारिशों को छोड़ दिया गया है, यद्यपि वे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों से संबंधित हैं। हम विधेयक के खंडों पर टिप्पण में, इस अक्रियान्वयन के लिए किसी कारण का पता लगाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। हमारा यह मत है कि शेष सिफारिशों को भी कार्यान्वित किया जाना चाहिए क्योंकि वे स्त्रियों के हित की रक्षा करेंगी।

1. **खत्री बनाम बिहार राज्य**, ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 928 : 1981 क्रि०ला०ज० 470 (एस सी)।
2. पैरा 5.17, पूर्वोद्धृत।

अध्याय 6

पुलिस थाने पर बुलाया जाना

6.1 भूमिका

इस अध्याय में एक ऐसी स्थिति पर विचार करने की प्रस्थापना करते हैं जो संज्ञेय अपराधों में पुलिस द्वारा अन्वेषण का भाग रूप है, अर्थात् पुलिस थाने पर किसी व्यक्ति (साक्षी) को बुलाया जाना। पुलिस द्वारा किया जाने वाला यह विशिष्ट कृत्य, दांडिक प्रक्रिया तंत्र के कुल मिला कर दृष्टिकोण से मात्र एक प्रारंभिक प्रक्रम और अमहत्वपूर्ण प्रतीत हो सकता है, किन्तु इस रिपोर्ट की विषय-वस्तु के प्रयोजन के लिए इसका निर्णायक महत्व है।

6.2 वर्तमान विधि

आरंभ में, हम संक्षेप में इस विषय पर वर्तमान विधि पर विचार करेंगे। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 का अध्याय 12, जिसका शीर्षक "पुलिस को इत्तिला और उनकी अन्वेषण करने की शक्तियां" है, धारा 156 द्वारा, किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति प्रदान की गई है। अन्वेषण की प्रक्रिया धारा 157 से आरंभ होती है जिसके अधीन, अन्वेषण अधिकारी से, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अपेक्षा की जाती है कि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करने के लिए, और, यदि आवश्यक हो तो अपराध का पता चलाने और उसकी गिरफ्तारी के उपाय के लिए, उस स्थान पर जाएगा। धारा 158 के अधीन, मजिस्ट्रेट स्वयं, अन्वेषण के लिए या प्रारंभिक जांच करने के लिए, निदेश दे सकता है। अधिकांश मामलों में पुलिस अधिकारी धारा 160 के अधीन साक्षियों को पुलिस थाने पर बुलाता है। (इस समय इसी की विस्तृत रूप में जांच की जाती है) और इस बात पर ध्यान दिया जाए कि धारा 161 के अधीन अन्वेषण अधिकारी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित समझे जाने वाले किसी व्यक्ति की मौखिक परीक्षा कर सकता है।

संहिता की धारा 160 निम्नवत् है :—

> "160. साक्षियों की हाजिरी की अपेक्षा करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति—(1) कोई पुलिस अधिकारी, जो इस अध्याय के अधीन अन्वेषण कर रहा है, अपने थाने की या किसी पास के थाने की सीमाओं के अन्दर विद्यमान किसी ऐसे व्यक्ति से, जिसकी दी गई इत्तिला से या अन्यथा उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित होना प्रतीत होता है, अपने समक्ष हाजिर होने की अपेक्षा लिखित आदेश द्वारा कर सकता है और वह व्यक्ति अपेक्षानुसार हाजिर होगा:
>
> परन्तु किसी पुरुष से जो पन्द्रह वर्ष से कम आयु का है या किसी स्त्री से, ऐसे स्थान से जिसमें ऐसा पुरुष या स्त्री निवास करती है, भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।
>
> (2) अपने निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर उपधारा (1) के अधीन हाजिर होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के उचित खर्चों का पुलिस अधिकारी द्वारा संदाय कराने के लिए राज्य सरकार इस निमित्त बनाए गए नियमों द्वारा उपबंध कर सकती है।"

6.3 धारा 160 दंड प्रक्रिया संहिता—सिफारिश

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160, जिसे हमने पूर्ववर्ती पैरा में उद्धृत किया है, नैत्यिक प्रकृति का कोई गौण उपबंध नहीं है, अपितु यह किसी मामले का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी को, पूछताछ करने के लिए किसी व्यक्ति को पुलिस थाने समन करने की बहुत व्यापक शक्तियां प्रदान करता है। अधिनियमन धारा, पुलिस अधिकारियों को, पूछताछ के प्रयोजनों के लिए व्यक्तियों को पुलिस थाने बुलाने की सदियों पुरानी परम्परा को विधायी अनुमोदन मंजूर करती है। कुल मिला कर, पुलिस द्वारा, इस शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है। यद्यपि विधि, अन्वेषण अधिकारी से, लिखित आदेश द्वारा पूछताछ के लिए

1. भारत का विधि आयोग, "बलात्संग और सहबद्ध अपराध-मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न" पर 84वीं रिपोर्ट और "अभिरक्षा में स्त्री" पर 133वीं रिपोर्ट।

किसी व्यक्ति को समन करने की अपेक्षा करती है। तिस पर भी, वास्तविक व्यवहार में, विरलतः उसका अनुकरण किया जाता है। साधारणतः अन्वेषण अधिकारी या पुलिस थाने का कोई सिपाही, साक्षी को पुलिस थाने पर बुलाता है जहां उससे पूछताछ की जाती है। कई बार तो उससे घंटों तक और कभी-कभी तो कई दिनों तक प्रतीक्षा कराई जाती है और यदि पूछताछ के दौरान साक्षी उस घटना से अज्ञान का अभिवाक् करता है जो अन्वेषण की विषय-वस्तु हो सकती है, तो उसे पुलिस थाने पर धमकाया जाता है, प्रपीड़ित किया जाता है, उस पर हमला किया जाता है और उसे यातना भी दी जाती है। कुछ व्यक्तियों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या पूछताछ के लिए किसी साक्षी को पुलिस थाने पर बुलाना आवश्यक है। साक्षी, अभियुक्त व्यक्ति नहीं है, उसे साक्ष्य देने के लिए पुलिस थाना पर जाने की जरूरत नहीं है यद्यपि उत्तरदायी नागरिक होने के कारण यह प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह पुलिस को उन तथ्यों और घटनाओं की बाबत इत्तिला दे जो उसकी जानकारी में हो सकती है। वह इत्तिला, पुलिस अधिकारी द्वारा साक्षी से, उसके निवास स्थान पर अभिप्राप्त की जा सकती है। तथापि, कुछ मामलों में ऐसी विशेष परिस्थितियां हो सकती हैं, जहां पुलिस थाने पर साक्षी की उपस्थिति आवश्यक हो सकती है, किंतु कुल मिला कर अन्वेषण अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए पुलिस थाने पर साक्षी की हाजिरी की अपेक्षा करने वाला उपबंध, आवश्यक या वांछनीय नहीं प्रतीत होता है। यह धारा, किसी साक्षी को, पुलिस थाने पर प्रपीड़ित करने और यातना देने के लिए एक आसान साधन और अवसर का उपबंध करता है। इसलिए, हमारा यह मत है कि सामान्यतः पुलिस थाने पर साक्षी की हाजिरी आवश्यक नहीं होगी इसके बजाय, उससे पूछताछ या उसकी परीक्षा उसके निवास स्थान पर की जानी चाहिए, किन्तु, यदि किसी विशिष्ट मामले में ऐसा करना आवश्यक है, तो उसके लिए कारण अभिलिखित किए जाएं और साक्षी को लिखित आदेश द्वारा समन किया जाए। विद्यमान दुष्प्रक्रिया को दूर करने के लिए धारा 160(1) का संशोधन किए जाने की आवश्यकता है।

6.4 शास्तिक मंजूरी की आवश्यकता

धारा 160(1) के परन्तुक का प्रमुख उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किशोर पुरुषों और स्त्रियों की परीक्षा उनके परिचित परिवेश में की जाए, ताकि वे उनके शारीरिक दुरुपयोग की संभावना और उनके मन पर मनोवैज्ञानिक तनाव की संभावना का विलोपन हो जाए। आधुनिक युग में, जब कि एकान्तता के संरक्षण को अधिक महत्व दिया जाता है, यह उपबंध स्पष्टतः प्रचुर महत्व पा लेता है। किसी भी दशा में, यह निहित धारणा कि स्त्री आदि को पुलिस थाने पर बुलाना अत्यधिक अवांछनीय कृत्य है, विवक्षित है कि उपबंध का सावधानीपूर्वक पालन किया जाए। खेद है कि इस समय, विधि, इस निर्बंधन का अधिनियमन करते समय, इस नमस्क्रियात्मक प्रतिषेध के प्रवर्तन का प्रत्यक्ष और विनिर्दिष्ट उपबंध करने में असफल रही है। इस स्थिति का उपचार करने के लिए ही दांडिक मंजूरी की प्रकृति का एक शास्तिक उपबंध करने की आवश्यकता है।

6.5 धारा 160क भारतीय दंड संहिता—सिफारिश

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160 का, उसके अनुपालन की अपेक्षा, भंग अधिक हुआ है। परिणामस्वरूप साक्षी के हित की रक्षा करने के लिए, विधि द्वारा संरक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं होता है, विधि आयोग ने, "**बलात्संग और सहबद्ध अपराध: मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के प्रश्न**" पर अपनी 84वीं रिपोर्ट में इस प्रश्न पर विचार किया था और दंड प्रक्रिया की संहिता की धारा 160 के अतिलंघन को आवेष्टित करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता में धारा 166 क के रूप में एक विनिर्दिष्ट उपबंध अधिनयमित करने की सिफारिश की थी। पुनः, "**अभिरक्षा में स्त्री**" पर अपनी 135वीं रिपोर्ट में, ऐसे लोक सेवक के लिए जो जानबूझकर विधि के ऐसे किसी निदेश की अवज्ञा करता है जो उसे किसी अपराध के अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए किसी व्यक्ति की हाजिरी की अपेक्षा से प्रतिषिद्ध करता है, दंड का उपबंध करने के लिए भारतीय दंड संहिता में एक नई धारा 166क के अन्तःस्थापन की सिफारिश की थी। दुर्भाग्यवश पूर्ववर्ती सिफारिशों को कार्यान्वित नहीं किया गया। परिणामस्वरूप, किसी साक्षी के लिए उपबंधित रक्षोपाय, कार्यान्वित नहीं हो पा रहे हैं।

6.6. हमने इस अध्याय में जो कुछ कहा है उसके परिप्रेक्ष्य में हम पुनः भारत के विधि आयोग की पूर्वोक्त पूर्ववर्ती रिपोर्टों में की गई इस आशय की सिफारिश को दोहराते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 166 के पश्चात्, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 के अतिलंघन पर शास्ति का उपबंध करने के लिए एक नई धारा 166क अन्तःस्थापित की जानी चाहिए। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाए कि स्थिति, दंड संहिता की धारा 166 या संहिता की किसी अन्य धारा द्वारा शासित होती है, तो भी हमारा सशक्त अभिमत यह है कि एक विनिर्दिष्ट उपबंध की, जैसी की हमने सिफारिश कि है, आवश्यकता है।

अध्याय 7

चिकित्सीय परीक्षा

7.1 फायदाप्रद और प्रतिकूल पक्ष

चिकित्सीय परीक्षा के विषय की अन्वेषण के दौरान किए जाने वाले अनाचार के साथ निम्नलिखित दो पक्षों में सुसंगति है :

(क) किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए उपयोगी हो सकती है कि अभिरक्षा के दौरान उसके शरीर पर कतिपय क्षतियां की गई थीं[1] यदि गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् किया जाए तो यह सिद्ध करने के लिए उपयोगी हो सकती है कि गिरफ्तारी के समय उसके शरीर पर कोई क्षति नहीं थी। यह "फायदाप्रद" पक्ष है। अभिरक्षान्तर्गत बलात्संग के अभियुक्त किसी लोक सेवक की चिकित्सीय परीक्षा, साक्ष्यिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है और समान रूप से फायदाप्रद के पक्ष के अंतर्गत आने वाली मानी जा सकती है।

(ख) उपर्युक्त के ठीक विरुद्ध, चिकित्सीय परीक्षा का एक प्रतिकूल पक्ष है। चिकित्सीय परीक्षा के समय या उसके दौरान, अनाचार, विशेष रूप से लैंगिक अपराधों के ऐसे शिकार व्यक्तियों की दशा में, हो सकते हैं जो अपने आप को चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रस्तुत करते हैं। विधि को इस संभावना के विरुद्ध भी संरक्षण करना है। इसमें संदेह नहीं कि लैंगिक अपराध के अभिकथित शिकार व्यक्ति पर किया गया अनाचार, तकनीकी रूप से "अभिरक्षान्तर्गत" अपराध के अंतर्गत नहीं आता है, किन्तु अभिरक्षा में स्त्रियों पर लैंगिक अपराध के मामले हुए हैं। हम सोचते हैं कि इस विषय के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करना आवश्यक है।

7.2 विभिन्न स्थितियों का प्रवर्गीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 और धारा 54 किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करती है। धारा 53 के अधीन, पुलिस अधिकारी, यदि उसके पास यह विश्वास करने के उचित आधार हैं कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की शारीरिक परीक्षा ऐसा अपराध किए जाने के बारे में साक्ष्य प्रदान करेगा तो उस व्यक्ति की ऐसी परीक्षा करा सकेगा। अभिव्यक्त व्यक्ति के लिए ऐसी चिकित्सीय परीक्षा कराना अनिवार्य होगा। दूसरी ओर धारा 54 कोई गिरफ्तार किया गया व्यक्ति की स्वयं अपनी चिकित्सीय जांच कराने का अधिकार प्रदान करती है यदि वह, मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने के समय यह अभिकथन करता है कि उसके शरीर की परीक्षा से ऐसा साक्ष्य प्राप्त होगा जो उसके द्वारा किसी अपराध के किए जाने को नासाबित कर देगा या जो यह साबित करेगा कि उसके शरीर के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति ने कोई अपराध किया था। ऐसी प्रार्थना किए जाने पर मजिस्ट्रेट, किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सीय व्यवसायी द्वारा ऐसे व्यक्ति के शरीर की चिकित्सीय परीक्षा के लिए निदेश देने के लिए आबद्ध है यदि मजिस्ट्रेट का यह विचार नहीं है कि प्रार्थना विलम्ब करने या न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के प्रयोजन के लिए की गई है। ये दो साधारण उपबंध सभी प्रकार के मामलों में, जिसके अंतर्गत बलात्संग और सजात अपराध तथा अभिरक्षान्तर्गत अपराध है, चिकित्सीय परीक्षा के प्रश्न को विनियमित करते हैं।

7.3 आमतौर पर अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा : धारा 53-54 दं० प्र० संहिता।

सिद्धान्ततः चिकित्सीय परीक्षा को निम्नलिखित शीर्षों के अधीन प्रवर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) अभियुक्त व्यक्ति की आमतौर पर चिकित्सीय परीक्षा;

(ख) बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा;

(ग) आमतौर पर शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा;

(घ) बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा।

1. भारत का विधि आयोग, बलात्संग और संबद्ध अपराध-मौलिक विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न पर 84वीं रिपोर्ट।

जहां तक प्रवर्ग (ग) के अधीन चिकित्सीय जांच का संबंध है, यह साधारणतः अनाचार की कोई समस्या प्रस्तुत नहीं करती है। प्रवर्ग (ख) और (घ) की चिकित्सीय परीक्षा के बारे में, ये दोनों बलात्संग और सजात अपराधों से संबंधित है। ऐसे मामलों में अभियुक्त और साथ ही शिकार व्यक्ति, दोनों की चिकित्सीय परीक्षा आवश्यक है क्योंकि यह अभिकथनों के सबूत की बाबत मूल्यवान साक्ष्य का उपबंध करती है। बलात्संग और सजात अपराधों के मामलों में अभियुक्त और शिकार व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा पर विधि आयोग द्वारा उसकी 84वीं "रिपोर्ट" में व्यापक रूप से विचार किया गया है। विस्तृत विचार विमर्श के पश्चात् आयोग का यह मत था कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 53 और 54 के विद्यमान उपबंध किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य दे पाने में पर्याप्त नहीं थे। आयोग ने धारा 53 का संशोधन करने और दंड प्रक्रिया संहिता में एक नई धारा 164 को अन्तःस्थापित करने की सिफारिश की थी। हम उन सिफारिशों से सहमत हैं और यह दुहराते हैं कि उन्हें कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

प्रसंगवश हम यह पाते हैं कि हाल में[2] (9 मई, 1994 को) दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन करने के लिए पुरःस्थापित विधेयक में, विधि आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर इस विषय पर मूल अधिनियम की धारा 53 और 54 का संशोधन करने के लिए है। तथापि हम पाते हैं कि खंडों पर टिप्पण में विधि आयोग की रिपोर्ट के प्रति कोई निदेश नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया गया होता, तो बहुत सहायक रहा होता।

7.4 अभियुक्त व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 53 पुलिस की प्रार्थना पर अभियुक्त व्यक्ति की अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के संबंध में है, जब कि धारा 54, अभियुक्त व्यक्ति स्वयं अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने के अधिकार से संबद्ध है। धारा 54, फायदाप्रद उपबंध है जो किसी अभियुक्त को उसके द्वारा किए गए किसी अपराध को नासाबित करने या उसके शरीर के विरुद्ध किए गए किसी अपराध को साबित करने का अवसर प्रदान करती है। यह उपबंध, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से सीधे संबद्ध है। धारा 54 के विद्यमान उपबंधों के अधीन यदि गिरफ्तारी के अधीन किसी व्यक्ति को यातना दी जाती है, या उस पर हमला किया जाता है, तो वह जब मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब मजिस्ट्रेट से, यह सिद्ध करने के लिए कि निरोध की अवधि के दौरान हमला किया गया है, अपने शरीर की चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रार्थना कर सकता है। यद्यपि यह अधिकार विद्यमान है, फिर भी जैसा कि पहले संकेत किया गया है, गिरफ्तार किए गए अधिकतर व्यक्ति, विशेष रूप से वे जिनके विरुद्ध अभिरक्षान्तर्गत अपराध किए गए हैं अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। यदि गिरफ्तार किया गया व्यक्ति, जो मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, इस अधिकार को जानता है तो भी वह पुलिस की उपस्थिति में परिवाद करने का या चिकित्सीय परीक्षा के लिए प्रार्थना करने का साहस नहीं करता है। अभिरक्षान्तर्गत यातना या लैंगिक शोषण के मौकों को न्यूनतम करने के लिए, यह आवश्यक और वांछनीय है कि अनाचारों के निवारण के हित में धारा 54 को सशक्त किया जाना चाहिए जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तब मजिस्ट्रेट के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यह पृच्छा करना आज्ञापक होना चाहिए कि क्या उसे अभिरक्षा में किसी यातना और अनाचार या लैंगिक शोषण का परिवाद है तथा मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यह भी सूचित किया जाना चाहिए कि विधि के अधीन उसे अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय द्वारा शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में[3] यह प्रेक्षण किया गया है कि यह भी वांछनीय है कि ऐसी जानकारी देना और पृच्छा करना पुलिस अधिकारी की अनुपस्थिति में होना चाहिए। मजिस्ट्रेट को गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से कोई पृच्छा करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कोई पुलिस अधिकारी अभियुक्त के साथ-साथ उपस्थित न हो। हमारा यह मत है कि धारा 54 को और प्रभावी तथा सार्थक बनाने के लिए उसको संशोधन करने की जरूरत है। हमारा यह और मत है कि संशोधित धारा में वे विषय विस्तृत रूप से उपवर्णित होने चाहिएं जो चिकित्सीय रिपोर्ट में उल्लिखित किए जाने हैं। हम, प्रसंगवश यह नोट कर सकते हैं कि 1984 के उ० प्र० अधिनियम सं० 1 द्वारा धारा 54 का संशोधन किया जा चुका है।

7.5 कार्यपत्र पर टीका टिप्पणी

हम इस प्रक्रम पर यह उल्लेख कर सकते हैं कि कार्य पत्र के साथ-साथ हमने इस प्रश्न पर विचार आमंत्रित किए थे कि क्या गिरफ्तारी के प्रत्येक मामले में या पूछताछ के दौरान अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा

2. दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन विधेयक, 1994 (9 मई, 1994)।

3. ए० आई० आर० 1993 एस सी 378.

के लिए एक उपबंध होना चाहिए। इस प्रश्न पर विभिन्न प्रतिक्रिया रही है। अधिकतर पुलिस अधिकारी और कुछ अधिवक्ता इसे आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी और कुछ अन्य व्यक्तियों का यह अभिमत है कि विशेष रूप से अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामलों में, अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करना एक आवश्यकता है। कुछ प्रतिक्रियाओं में किसी व्यक्ति को, उसकी गिरफ्तारी पर ही और पूछताछ से पूर्व अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा का सुझाव दिया गया है। हम इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि इससे अन्वेषण में विलंब होगा।

7.6 सिफारिश

उपर्युक्त परिचर्चा के परिप्रेक्ष्य में हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 का उस अध्याय के पैरा 7.4 में बताए गए बिंदुओं का समावेश करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए। चिकित्सीय रिपोर्ट के ब्यौरों का समावेश करने के लिए प्रारूप तैयार करते समय, विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्याय 4 से सहायता ली जा सकती है।

अध्याय 8

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

8.1 भूमिका

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 12 और 13, अपराध के अन्वेषण और अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के लिए प्रक्रिया अधिकथित करते हैं। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला प्राप्त होने पर पुलिस तंत्र सक्रिय हो जाता है। ऐसी इत्तिला, यदि संज्ञेय अपराध से सम्बद्ध है तो धारा 154 के अधीन और यदि इत्तिला असंज्ञेय है तो धारा 155 के अधीन अभिलिखित की जाती है। ये दोनों धाराएं महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि धाराओं की स्कीम का पूरी तरह पालन किया जाए तो विचारण पूर्व प्रक्रम (गिरफ्तारी, पूछताछ, अन्वेषण न्यायालय को रिपोर्ट का अग्रेषण) पर दांडिक प्रक्रिया तंत्र गति में हो जाता है।

धारा 154 के अधीन किसी संज्ञेय अपराध की इत्तिला प्राप्त होने पर पुलिस को न्यायालय के आदेश के बिना, अन्वेषण करने की शक्ति है, जब कि धारा 155 के अधीन किसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी असंज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति नहीं है। किसी संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला, यदि पुलिस को दी जाती है तो वह धारा 154 या 155 के अनुसार अभिलिखित की जानी चाहिए। साधारणतः ऐसा नहीं किया जाता है और ऐसा अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की दशा में अधिक होता है। इस अध्याय के परवर्ती पैराओं को उपर्युक्त स्थिति के योगदायी कुछ कारकों की जांच करने का प्रस्ताव कर रहे हैं और विधि में सुधार के रूप में ऐसे उपायों का, जो आवश्यक प्रतीत होते हैं, सुझाव दे रहे हैं।

8.2 इत्तिला का अरजिस्ट्रीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 पुलिस के लिए किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित इत्तिला रजिस्टर करना आबद्धकर बनाती है। धारा 157 पुलिस के लिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करना, तथा अपराधी की बरामदगी और गिरफ्तारी के लिए उपाय करना और आबद्धकर बनाती है। दुर्भाग्यवश अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में भी इन उपबंधों के अनुपालन का प्रायः अभाव रहता है। परिवारों का अरजिस्ट्रीकरण, पुलिस थानों की एक आम दुष्प्रथा है। इस दुःखद स्थिति के अनेक कारण हैं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने इस तथ्य पर विचार किया है कि भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा "भारत में पुलिस की छवि", पर किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया था कि 50 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने पुलिस थानों में परिवादों के अरजिस्ट्रीकरण का उल्लेख एक आम दुष्प्रथा के रूप में किया था। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अरजिस्ट्रीकरण के लिए अनेक उपादान बताए थे जिसमें अनेक अन्य कर्तव्यों के भारी दबाव के बीच अन्वेषणात्मक कार्य का अतिरिक्त भार लेने में कर्मचारिवृन्द की अरुचि के अतिरिक्त बाहरी प्रभाव और भ्रष्टाचार भी है। यह भी कहा गया था कि यदा-कदा "उनके भारसाधन के अधीन दक्ष पुलिस प्रशासन" दिखलाने के लिए रिकार्ड पर रिपोर्ट किए गए आंकड़े कम करने की इच्छा भी होती थी। आपराधिक स्थिति के निर्धारण और पुलिस कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चाधिकारियों द्वारा लागू किए जाने वाले सांख्यिकीय अभिगम के कारण ऐसा होता है जिसका परिणाम यह है कि यह दृष्टिकोण अधिकारी तंत्र में नीचे की ओर बढ़ता जाता है और पुलिस थाने के अधिकारियों के मध्य, जब और जैसे ही अपराध उनकी जानकारी में लाए जाते हैं उनको रजिस्टर करने में उनके अड़ियलपन और और इंकार के रूप में प्रकट होता है। अनुभव से पता चला है कि जब कभी पुलिस प्रशासन द्वारा इस दुष्प्रथा को हटाने का गंभीर प्रयास किया गया तब रजिस्ट्रीकृत संज्ञेय अपराधों की संख्या में प्रचुर वृद्धि हुई है। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला को अभिलिखित करने से पुलिस द्वारा इंकार एक गंभीर विषय है जो परिवादी को उत्पीड़न में डालता है और पुलिस की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है। हमारा सशक्त अभिमत है कि किसी संज्ञेय अपराध की पुलिस को दी गई प्रथम इत्तिला के अरिजिस्ट्रीकरण के लिए प्रभावी विधि होनी चाहिए।

---

1. राष्ट्रीय पुलिस आयोग 40वीं रिपोर्ट (1980), पृष्ठ 2
2. भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1992) 2 आल इंडिया क्रिमिनल रिपोर्ट, पृष्ठ 546

के लिए एक उपबंध होना चाहिए। इस प्रश्न पर मिश्रित प्रतिक्रिया रही है। अधिकतर पुलिस अधिकारी और कुछ अधिवक्ता इसे आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, एक वरिष्ट पुलिस अधिकारी और कुछ अन्य व्यक्तियों का यह अभिमत है कि विशेष रूप से अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामलों में, अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करना एक आवश्यकता है। कुछ प्रतिक्रियाओं में किसी व्यक्ति को, उसकी गिरफ्तारी पर ही और पूछताछ से पूर्व अनिवार्य चिकित्सीय परीक्षा का सुझाव दिया गया है। हम इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हैं क्योंकि इससे अन्वेषण में विलंब होगा।

7.6 सिफारिश

उपर्युक्त परिचर्चा के परिप्रेक्ष्य में हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 का उस अध्याय के पैरा 7.4 में बताए गए बिंदुओं का समावेश करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए। चिकित्सीय रिपोर्ट के ब्यौरों का समावेश करने के लिए प्रारूप तैयार करते समय, विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्याय 4 से सहायता ली जा सकती है।

अध्याय 8

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

8.1 भूमिका

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 12 और 13, अपराध के अन्वेषण और अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के लिए प्रक्रिया अधिकथित करते हैं। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला प्राप्त होने पर पुलिस तंत्र सक्रिय हो जाता है। ऐसी इत्तिला, यदि संज्ञेय अपराध से सम्बद्ध है तो धारा 154 के अधीन और यदि इत्तिला असंज्ञेय है तो धारा 155 के अधीन अभिलिखित की जाती है। ये दोनों धाराएं महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि धाराओं की स्कीम का पूरी तरह पालन किया जाए तो विचारण पूर्व प्रक्रम (गिरफ्तारी, पुछताछ, अन्वेषण न्यायालय को रिपोर्ट का अग्रेषण) पर दांडिक प्रक्रिया तंत्र गति में हो जाता है।

धारा 154 के अधीन किसी संज्ञेय अपराध की इत्तिला प्राप्त होने पर पुलिस को न्यायालय के आदेश के बिना, अन्वेषण करने की शक्ति है, जब कि धारा 155 के अधीन किसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी असंज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की शक्ति नहीं है। किसी संज्ञेय या असंज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला, यदि पुलिस को दी जाती है तो वह धारा 154 या 155 के अनुसार अभिलिखित की जानी चाहिए। साधारणतः ऐसा नहीं किया जाता है और ऐसा अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की दशा में अधिक होता है। इस अध्याय के परवर्ती पैराओं को उपर्युक्त स्थिति के योगदायी कुछ कारकों की जांच करने का प्रस्ताव कर रहे हैं और विधि में सुधार के रूप में ऐसे उपायों का, जो आवश्यक प्रतीत होते हैं, सुझाव दे रहे हैं।

8.2 इत्तिला का अरजिस्ट्रीकरण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 पुलिस के लिए किसी संज्ञेय अपराध से संबंधित इत्तिला रजिस्टर करना आबद्धकर बनाती है। धारा 157 पुलिस के लिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का अन्वेषण करना, तथा अपराधी की बरामदगी और गिरफ्तारी के लिए उपाय करना और आबद्धकर बनाती है। दुर्भाग्यवश अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में भी इन उपबंधों के अनुपालन का प्रायः अभाव रहता है। परिवादों का अरजिस्ट्रीकरण, पुलिस थानों की एक आम दुष्प्रथा है। इस दुःखद स्थिति के अनेक कारण हैं। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने इस तथ्य पर विचार किया है कि भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा "भारत में पुलिस की छवि", पर किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया था कि 50 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाताओं ने पुलिस थानों में परिवादों के अरजिस्ट्रीकरण का उल्लेख एक आम दुष्प्रथा के रूप में किया था। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अरजिस्ट्रीकरण के लिए अनेक उपादान बताए थे जिसमें अनेक अन्य कर्तव्यों के भारी दबाव के बीच अन्वेषणात्मक कार्य का अतिरिक्त भार लेने में कर्मचारिवृन्द की अरुचि के अतिरिक्त बाहरी प्रभाव और भ्रष्टाचार भी है। यह भी कहा गया था कि यदा-कदा "उनके भारसाधन के अधीन दक्ष पुलिस प्रशासन" दिखलाने के लिए रिकार्ड पर रिपोर्ट किए गए आंकड़े कम करने की इच्छा भी होती थी। आपराधिक स्थिति के निर्धारण और पुलिस कार्य निष्पादन के मूल्यांकन के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चाधिकारियों द्वारा लागू किए जाने वाले सांख्यिकीय अभिगम के कारण ऐसा होता है जिसका परिणाम यह है कि यह दृष्टिकोण अधिकारी तंत्र में नीचे की ओर बढ़ता जाता है और पुलिस थाने के अधिकारियों के मध्य, जब और जैसे ही अपराध उनकी जानकारी में लाए जाते हैं उनको रजिस्टर करने में उनके अड़ियलपन और और इंकार के रूप में प्रकट होता है। अनुभव से पता चला है कि जब कभी पुलिस प्रशासन द्वारा इस दुष्प्रथा को हटाने का गंभीर प्रयास किया गया तब रजिस्ट्रीकृत संज्ञेय अपराधों की संख्या में प्रचुर वृद्धि हुई है। किसी अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला को अभिलिखित करने से पुलिस द्वारा इंकार एक गंभीर विषय है जो परिवादी को उत्पीड़न में डालता है और पुलिस की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करता है। हमारा सशक्त अभिमत है कि किसी संज्ञेय अपराध की पुलिस को दी गई प्रथम इत्तिला के अरजिस्ट्रीकरण के लिए प्रभावी विधि होनी चाहिए।

---

1. राष्ट्रीय पुलिस आयोग 40वीं रिपोर्ट (1980), पृष्ठ 2
2. भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1992) 2 आल इंडिया क्रिमिनल रिपोर्ट, पृष्ठ 548

8.3 धारा 167क भारतीय दंड संहिता—सिफारिश

विद्यमान विधि के अधीन संहिता की धारा 154(1) द्वारा यथा व्यान में रखी गई इत्तिला अभिलिखित करने से इंकार करने पर पुलिस के विरुद्ध कोई दांडिक कार्रवाई करने के लिए कोई उपबंध नहीं है। धारा 154 की उपधारा (3) यह उपबंध करती है कि पुलिस द्वारा किसी मामले को रजिस्टर करने से इंकार करने पर, व्यथित व्यक्ति, शिकायत का सार लिखित रूप में पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है जो मामले का स्वयं अन्वेषण कर सकता है या किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को उसका अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है। यह प्रक्रिया, निरपवादतः उपयोगी है जैसी कि एक रिपोर्ट किए गए मामले में व्याख्या की गई है, किन्तु यह अपने आप में, अरजिस्ट्रीकरण की समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त नहीं है। भारत के विधि आयोग ने "बलात्संग और सहबद्ध अपराधों" संबंधी अपनी 84वीं रिपोर्ट में इस स्थिति पर विचार किया है। आयोग ने यह पाया था कि प्रशासनिक कार्रवाई या इत्तिला देने की वैकल्पिक पद्धति अधिक प्रभावी साबित नहीं होती और गलती करने वाले पुलिस अधिकारियों को, किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित इत्तिला अभिलिखित करने में उनकी असफलता के लिए दंड का उपबंध करने वाले उपयुक्त दांडिक उपबंध की आवश्यकता थी। आयोग ने भारतीय दंड संहिता में धारा 167क के अधिनियमन के लिए सिफारिश की थी। सिफारिश की गई धारा का प्रारूप निम्नवत् था :

> "167क. जो कोई, किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी होते हुए और विधि द्वारा अपेक्षित उसको रिपोर्ट की गई किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित कोई इत्तिला अभिलिखित करने से इंकार करता है या किसी उचित कारण के बिना ऐसी इत्तिला अभिलिखित करने में असफल रहता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा।"

उपर्युक्त दांडिक उपबंध यदि कार्यान्वित किया जाता है तो पुलिस पर इसका निश्चय रूप से भयोपरांत प्रभाव होगा और यह संज्ञेय अपराधों के किए जाने से संबंधित इत्तिला रजिस्टर करने से इंकार करने की दुष्प्रथा को हतोत्साहित या निवारित कर सकेगा। हम आयोग द्वारा उसकी 84वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश से पूर्णतः सहमत हैं और उसे पुनः दुहराते हैं।

8.4 पुलिस और अन्य अभिकरणों द्वारा अन्वेषण

साधारणतः पुलिस की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के शरीर के विरुद्ध किसी अपराध से संबंधित परिवाद पुलिस अधिकारियों द्वारा भाईचारे और सहकर्मी भावना के कारण अभिलिखित नहीं की जाती है। मृत व्यक्ति की पत्नी या उसके बालकों द्वारा या शिकार व्यक्ति द्वारा इत्तिला या परिवाद की साधारणतः उपेक्षा की जाती है और चूंकि व्यक्तियों के ऐसे प्रवर्ग के पास कोई संसाधन नहीं होते हैं अतः वे अपनी व्यथाओं के परित्राण के लिए पुलिस अधीक्षक या न्यायालय तक पहुंच जाने की स्थिति में नहीं होते हैं। यदि वह पुलिस, जो नागरिकों का संरक्षण करती है, अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को यातना देने या उस पर हमला करने में विधि का अतिलंघन करती है, और यदि उनके कृत्य के विरुद्ध परिवाद पुलिस द्वारा अभिलिखित नहीं किया जाता है तो प्रश्न यह उठता है कि किसी शिकार व्यक्ति या उसके नातेदार के अभिकथन का अन्वेषण कैसे किया जाना है। ऐसी स्थिति में न्यायालय केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो द्वारा मामलों के अन्वेषण का निर्देश देने के लिए बाध्य होते हैं। उच्चतम न्यायालय[3] ने प्रवर्तन महानिदेशालय की अभिरक्षा में अभिकथित मृत्यु के मामले में और दिल्ली उच्च न्यायालय ने[4] पुलिस अभिरक्षा में अभिकथित मृत्यु के मामले में, केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो को अन्वेषण करने का निदेश दिया था। अनेक रिपोर्ट किए गए विनिश्चय है जहां अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के अभिकथनों पर अन्वेषण किए जाने का निदेश दिया गया है। कुछ मामलों में न्यायालयों ने, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में पुलिस की ज्यादती की जांच करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश जैसे न्यायिक अधिकारियों को नियुक्त किया है। ये घटनाएं अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से संबंधित अभिकथनों की जांच और उनका अन्वेषण करने के लिए एक स्वतंत्र अन्वेषण अधिकरण होने की वांछनीयता प्रदर्शित करती हैं।

---

3. संदर्भ सरविन्दर सिंह ग्रोवर की मृत्यु, 1993 (1 कि०ला० रि० 163 (एम सी)
4. भारत भूषण बनाम राज्य (1986) कि० ला० ज० 1624 (दिल्ली)

हमारी प्रश्नावली की कुछ प्रतिक्रियाओं में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से संबंधित परिवादों का अन्वेषण करने के लिए पुलिस से भिन्न किसी स्वतंत्र अभिकरण के बनाए जाने का सुझाव दिया गया है। ऐसे विषयों में केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो को अन्वेषण सौंपने के भी सुझाव दिए गए हैं। मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीशों के अभिकरण के माध्यम से न्यायिक अधिकारियों द्वारा जांच कराने का उपबंध करने के लिए भी और सुझाव दिए गए हैं जैसा न्यायालयों द्वारा अनेक मामलों में किया गया है। इस तंग करने वाली समस्या पर चिन्तापूर्वक विचार करने के पश्चात् हम सोचते हैं कि वित्तीय विचार के कारण, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के किए जाने से संबंधित परिवादों का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए अनन्यतः एक स्वतंत्र अभिकरण स्थापित करना संभव या शक्य नहीं हो सकता है। अतः हमारा यह मत है कि अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के किए जाने से संबंधित इत्तिला अभिलिखित करने की आवश्यकता पर पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारियों पर जोर देने के लिए पुलिस प्रशासन के उच्चतर अधिकारियों के लिए आवश्यकता है और इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए तथा भूल करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने के लिए प्रत्येक प्रशासनिक प्रयास किया जाना चाहिए। किन्तु यह प्रशासनिक व्यवस्था ही अपने आप वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति नहीं करेगी। हमारा विचार है कि विधि द्वारा अभिरक्षान्तर्गत हिंसा के मामले को रजिस्टर करने से पुलिस की इंकारी पर, जांच और भूल करने वाले पुलिस अधिकारियों के अभियोजन के लिए न्यायिक अधिकारियों के समक्ष, याचिका फाइल करने के लिए उपबंध करना वांछनीय और उचित होगा। न्यायिक अधिकारी द्वारा जांच पुलिस अधिकारी को पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन रखेगी और यह लोगों में विश्वास भी बढ़ाएगी।

8.5 दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 154 को अंतःस्थापित करने के लिए सिफारिश

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अभिरक्षान्तर्गत अपराध की प्रकृति वाले अपराधों के अभिकथनों के त्वरित प्रभावी और स्वतंत्र अन्वेषण के लिए सर्वोच्च आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, एक विनिर्दिष्ट उपबंध अंतःस्थापित करने के लिए, जो ऐसा अन्वेषण सुनिश्चित करेगी, दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन किया जाना चाहिए। साथ ही साथ, हम कम से कम इस समय यह आवश्यक नहीं समझते कि इस प्रयोजन के लिए एक नए अभिकरण के सृजन के लिए सिफारिश करें। नया अभिकरण वित्तीय विचार के कारण जैसा ऊपर कथित है, यह मानते हुए भी कि प्रशासनिक समस्याएं नहीं उठेंगी, शक्य नहीं हो सकेगा। हमारी परिकल्पना एक ऐसी प्रस्थापना की है जिसके अधीन किसी अभिरक्षान्तर्गत (संज्ञेय) अपराध को रजिस्ट्री करने से पुलिस द्वारा इंकार करने पर, किसी ऐसे समुचित न्यायिक प्राधिकारी तक पहुंच पाना संभव होना चाहिए जिसे प्रारंभिक जांच करने और फिर (यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसी कार्रवाई होनी चाहिए) किसी सक्षम मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद फाइल करने का निदेश देने के लिए सशक्त होना चाहिए। समुचित न्यायिक प्राधिकारी (अभिकथित) अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु के मामले में सेशन न्यायालय और (अभिकथित) अभिरक्षान्तर्गत अपराध, जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, के मामले में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट होगा। हम सिफारिश करते हैं कि उक्त आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में एक नई धारा 154क अंतःस्थापित की जाए। यह भी उपबंध किया जा सकता है कि सेशन न्यायालय या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (यथास्थिति) यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी कार्रवाई होनी चाहिए तो किसी सचिवालीय अधिकारी को, ऊपर यथा अधिकथित परिवाद करने का निदेश दे सकता है।

अध्याय 9

मृत्यु की दशा में जांच और मृत्यु समीक्षा

9.1 भूमिका

हम इस अध्याय में, संदेहास्पद मृत्यु के मामलों में जांच और मृत्यु समीक्षाओं के बारे में वर्तमान विधिक ढांचे पर, अति संक्षेप में, विचार करने की प्रस्थापना करते हैं।

9.2 पुलिस की भूमिका

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 द्वारा आत्महत्या, दुर्घटना द्वारा मृत्यु अथवा ऐसी परिस्थिति में मृत्यु, जिससे उचित रूप से अपराध का संदेह होता है, के मामले में किसी थाने का भारसाधक पुलिस अधिकारी या सशक्त किया गया कोई अन्य अधिकारी मृत्यु समीक्षाएं करने के लिए सशक्त निकटतम कार्यपालक मजिस्ट्रेट को तथ्य की सूचना देगा और उस स्थान पर जाकर अन्वेषण कर सकेगा। कतिपय मामलों में जहां किसी स्त्री की मृत्यु अंतर्वलित है और जहां मृत्यु के कारण की बाबत संदेह भी है, वहां संहिता की धारा 173(3) में एक विशेष उपबंध है। धारा 175 पुलिस अधिकारी को साक्षी के रूप में व्यक्तियों को समन करने के लिए शक्ति प्रदान करती है।

9.3 मजिस्ट्रेट द्वारा जांच

1993 में यथा संशोधित संहिता की धारा 176(1), किसी मजिस्ट्रेट द्वारा, जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु पुलिस की अभिरक्षा में रहते हुए हो जाती है, वहां मृत्यु के कारण की जांच, आज्ञापक बनाती है। हमारे लिए इस धारा द्वारा अनुध्यात प्रक्रिया की, विस्तृत रूप में चर्चा करना आवश्यक नहीं है। तथापि, इस प्रकार की जांच साधारणतया एक अनौपचारिकता मात्र होती है, और यह विश्वास नहीं पैदा करती क्योंकि जांच, किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा की जाती है।

9.4 मृत्यु समीक्षक

कलकत्ता और मुम्बई नगरों में, मृत्यु समीक्षक अधिनियम, 1871 लागू है और संदेहास्पद मृत्यु की दशाओं में मृत्यु समीक्षा, अधिनियम के अधीन नियुक्त किए गए मृत्यु समीक्षक या उसके डिप्टियों द्वारा की जाती है।

9.5 जांच आयोग

जहां किसी व्यक्ति की पुलिस अभिरक्षा में या अन्यथा संदेहास्पद परिस्थितियों में हुई मृत्यु, राज्य सरकार द्वारा जांच आयोग की नियुक्ति के लिए उचित विषय के रूप में मानी जाती है, वहां जांच आयोग अधिनियम 1952 के अधीन ऐसे आयोग के गठन के लिए आदेश किया जाता है।

9.6 विशेष अधिनियम

विशिष्ट विषयों को लागू विशेष अधिनियमों में, रेल, विमान, वाणिज्य पोत परिवहन, आदि जैसे परिवहन में, कारित मृत्युओं की जांच के लिए उपबंध किए जा सकते हैं।

---

1. देखिए : संजीव रेड्डी नगर, पुलिस स्टेशन, हैदराबाद में 10-7-1986 को पुलिस अभिरक्षा में हुई श्री यू० नरसिंह की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, 28, आंध्र प्रदेश सरकार (1986); वी० नगर पुलिस स्टेशन, विजयवाड़ा में 17-9-1986 को हुई श्री टी० मुरलीधरन की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट आंध्र प्रदेश सरकार, 1987 येलेश्वरम पुलिस चौकी पर 26-8-1985 को हुई दादुगुला संकुरिया की मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, आंध्र प्रदेश सरकार, 1986 : चुगयूटयी में पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए श्री मचेरला अंचया की 6-9-1986 को हुई मृत्यु पर जांच आयोग की रिपोर्ट, (आंध्र प्रदेश सरकार), ए० जी० नूरानी "डेथ इन पुलिस कस्टडी"। 20 इकोनामिक, एंड पोलिटिकल वीकली 1161 (1985), विशेष रिपोर्ट "आंध्र सेडिस्ट काप्स एण्ड लाकअप डेथ्स", ब्लिट्ज, 5 नवंबर 1986 पृष्ठ 10, स्टेट्समैन, 15 और 16 अप्रैल, 1994 में श्री शंकरसेन का लेख।

9.7 रिट अधिकारिता

जहां कोई विषय उच्चतम न्यायालय या अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया जाता है, वहां, मृत्यु के कारण और उसकी परिस्थिति की जांच के लिए आदेश, उन न्यायालयों द्वारा उनकी संवैधानिक अधिकारिता के अधीन पारित किया जा सकता है।

9.8 अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु

इस अध्याय में हमने जिन उपबन्धों की संक्षेप में रूपरेखा प्रस्तुत की है वे विनिर्दिष्टः, अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु की समस्या पर कार्रवाई के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। इसी कारण हमने इस विषय पर विनिर्दिष्ट और पृथक् सिफारिश की है जो अभिरक्षा के दौरान होने वाली अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु की दशा में सेशन न्यायाधीश द्वारा, या ऐसी शारीरिक क्षतियों की दशाओं में जिनका परिणाम मृत्यु नहीं है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा जांच पर विचार करती है।[1]

---

1. पैरा 8.5 पूर्वोक्त।

95-M/J(D)127MofLJ&CA—4

अध्याय 10

अभियोजन के लिए मंजूरी

10.1 वर्तमान स्थिति

इस अध्याय में हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के एक महत्वपूर्ण उपबंध–धारा 197–पर विचार करेंगे जिसके अधीन लोक सेवकों के कतिपय प्रवर्गों को समुचित सरकार की मंजूरी के बिना अभियोजित नहीं किया जा सकता, शर्त यह है कि लोक सेवक द्वारा अपराध तब किया गया हो "जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था।" यह सामान्यतः ज्ञात है कि कदाचार के लिए अभियोजित लोक सेवक, अभियोजन की रोक के लिए प्रायः इस धारा का आश्रय लेते हैं क्योंकि यह धारा न्यायालय को प्रश्नगत अपराध के विचारण में उसकी अधिकारिता से वंचित करती है। "कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था" आदि शब्दों को अति संक्षिप्त नहीं पाया गया है। उन पर अत्यधिक निर्णय विधि एकत्र हो गई है, इतनी प्रचुर निर्णय विधि के होते हुए भी, प्रत्येक समय जब लोक सेवक अभियोजित किया जाता है तब इस धारा के अधीन आश्रय पाने का प्रयास किया जाता है। सम्प्रति, हमारा इस धारा के विभिन्न शाखा विस्तारों से संबंध नहीं है। हमारे प्रयोजन के लिए इतना ही प्रश्न सुसंगत है कि इस धारा द्वारा लोक सेवकों को दिए गए संरक्षण के दुरुपयोग को, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बाबत, किस प्रकार अपवर्जित किया जा सकता है। निरपवादतः धारा के उपबंधों का स्पष्टीकरण, अनिवार्यतः ऐसे अपराधों तक ही परिसीमित नहीं रह सकता है।

10.2 इतिवृत्त

यह समझना अति रोचक है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (वर्तमान संहिता की पूर्ववर्ती) की धारा 197 के तत्स्थानी शब्द (1923 में उस धारा के संशोधन के पूर्व) "ऐसे न्यायाधीश या लोक सेवक के रूप में किसी अपराध का दोषी" थे। इससे विनिश्चयों में विरोध उत्पन्न हुआ था कि उन शब्दों का संक्षिप्त विस्तार क्या था। एक मत यह था कि इन शब्दों के अंतर्गत केवल वही मामले आते थे जहां अपराध ऐसा था कि अपराधी के लोक सेवक होने का तथ्य, विधि में यथापरिभाषित अपराध का आवश्यक संघटक था, जब कि इसके प्रतिकूल मत भी व्यक्त किया गया था। इस प्रकार, प्रथम मत के अनुसार, यदि किसी न्यायाधीश ने किसी मामले का विचारण करते हुए, मानहानिकारक भाषा का प्रयोग किया था तो 1898 की संहिता की धारा 197 लागू नहीं होनी थी। दूसरी ओर, व्यापक मत के अनुसार धारा के अंतर्गत वे सभी मामले आ जाएंगे जहां अपराध का कुछ संबंध उसके पदीय कर्तव्य से था। 1923 के संशोधनकारी अधिनियम द्वारा "ऐसे न्यायाधीश या लोक सेवक के रूप में किसी अपराध का दोषी था" शब्दों के स्थान पर "जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था" शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे। न्यायालयों ने प्रायः इस संशोधन को धारा का विस्तार, व्यापक बनाने वाला माना था।

10.3 संशोधन

ऊपर यथाकथित, 1923 के संशोधन के पश्चात् न्यायालय को प्रत्येक मामले में यह विनिश्चय करना पड़ता है कि क्या अपराध, पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करते समय किया गया था। वर्तमान प्रक्रम पर हमारी चिंता का प्रश्न यह है कि क्या यह सुनिश्चित करने के लिए धारा को स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है कि धारा के अधीन मंजूरी की अपेक्षा का अभिवाक् अभिरक्षा संबंधी अपराधों के लिए किसी अधिकारी के अभियोजन के रोध के रूप में नहीं किया जाएगा। इस तथ्य पर विचार करते हुए कि प्रायः ऐसे प्रत्येक मामले में, जहां मंजूरी के आश्रय की अपेक्षा होती है, हम समझते हैं कि इस निमित्त स्पष्टीकरण देना आवश्यक है। निरपवादतः ऐसे संशोधन के बिना भी, यह तर्क किया जा सकता है कि धारा की भाषा के अंतर्गत अभिरक्षा

1. नन्दू लाल बराक बनाम एन० एन० मित्तर (1899) आई एल आर 26 कल० 853, 861, 862
2. आर० पी० कपूर बनाम सी० हरबंश सिंह (1963) क्रि० ला० ज० 593
3. हेमेन्द्र नाथ गुप्त बनाम इम्परर ए आई आर (1937) पटना 160, 162

में यातना या कारित मृत्यु नहीं आएंगे। एक मामले में जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 270(1) (ऐसी ही भाषा में उल्लिखित) के अधीन उठाया, फेडरल कोर्ट ने, न्यायमूर्ति वरादचारियर के माध्यम से, निम्नवत् संप्रेक्षण किया था"[1]

> "मामलों के एक समूह में इस बात पर जोर दिया जाता है कि परिवाद किए गए कार्य की प्रकृति में कुछ ऐसा होना आवश्यक है जिससे उसे करने वाले व्यक्ति के पदीय चरित्र का कुछ संबंध हो। दूसरे समूह में, इन परिस्थितियों पर अधिक जोर दिया गया है कि अभियुक्त की पदीय प्रकृति या प्रास्थिति ने उसे अपराध करने का अवसर प्रदान किया था। मुझे ऐसा लगता है कि पहला ही सही दृष्टिकोण है। मामलों के तीसरे समूह में प्रायः अनन्य रूप से इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि वह ऐसा समय था जब अभियुक्त अपने पदीय कर्तव्य में लगा था कि अभिकथित अपराध किया गया कहा गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 (विशेष रूप से, 1923 में उसके संशोधन द्वारा पुरःस्थापित रूप में) "जब वह अपने————" आदि पद के प्रयोग को इस दृष्टिकोण का कुछ समर्थक अभिनिर्धारित किया गया है। जब कि मैं, समय कारक के महत्व की उपेक्षा नहीं करना चाहता हूं, फिर भी मुझे इसी को परीक्षा का माध्यम बना देना ठीक नहीं प्रतीत होता है। बहस के क्रम में सुझाए गए एक दृष्टांत को लें, यदि किसी चिकित्सा अधिकारी पर, जब वह अस्पताल में अपने कर्तव्य पर हो, किसी रोगी के साथ बलात्संग करने का, या किसी रोगी के शरीर से आभूषण चुरा लेने का आरोप लगाया जाता है, तब इस बात पर विश्वास कर पाना कठिन है कि विधायिका का आशय यह था कि उसे स्थानीय सरकार की पूर्व मंजूरी के सिवाय ऐसे अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता था।"

संहिता की धारा 190 मजिस्ट्रेट को किसी अपराध को संज्ञान करने के लिए सशक्त करती है। धारा 197 में, धारा 190 में अधिकथित साधारण नियम का एक अपवाद अंतर्निहित है क्योंकि यह कतिपय मामलों में न्यायालय की सक्षमता और उसकी अधिकारिता के रोध विनियमित करती है। धारा का उद्देश्य और प्रयोजन, यह सुनिश्चित करना है कि लोक सेवकों और कर्मचारियों को उनके पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में अभिकृत्य करते समय, अनावश्यक या तंग करने वाले अभियोजनों के अध्यधीन नहीं किया जाना चाहिए। अभियोजन, वरिष्ठ प्राधिकारी को सुविचारित राय पर अनुज्ञा की गई मंजूरी के पश्चात् ही अनुज्ञेय है। उच्चतम न्यायालय[2] ने अभिनिर्धारित किया था कि किए गए अभिकथित अपराध में पदीय कर्तव्य के निवहन की कोई बात हो या किसी रीति में वह उससे सम्बद्ध अवश्य हो। धारा 197 के अधीन मंजूरी का प्रश्न तब तक नहीं उठ सकता जब तक कि परिवाद किया गया कार्य, अपराध न हो, अवधारित करने के लिए मात्र एक ही बात है कि क्या वह पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था। कार्य और पदीय कर्तव्य के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए। इस धारा पर विनिश्चित मामलों का प्राचुर्य है। हम वर्तमान प्रयोजन के लिए उनके प्रति कोई निर्देश करना आवश्यक नहीं समझते हैं। तथापि, किसी भी न्यायालय ने यह दृष्टिकोण नहीं अपनाया है कि अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के लिए किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी आवश्यक है।

10.4 यातना के मामले

यातना के प्रश्न पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार करते समय मद्रास के उस मामले के प्रति निर्देश किया जा सकता है जहां आरोप, भारतीय दंड संहिता की धारा 330 के अधीन लगाया गया था।[3] उस मामले में, एक मजिस्ट्रेट ने, जिसे कतिपय अपराधों के संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में रखने की शक्ति की, एक ऐसे व्यक्ति को, जिसे उसने गिरफ्तार किया था, परिरोध में रखा था और उस व्यक्ति को अपराध की संस्वीकृति के लिए बाध्य करने हेतु यातना दी थी। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसी यातना देने में, उसका उसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करना तात्पर्यित नहीं था और धारा 197 दं० प्र० सं० के अधीन मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी।

1. होरी राम सिंह बनाम इम्परर ए आई आर 1937 एफ सी 43, 56, 40 क्रि० ला० ज० 468
2. प्रभाकर बनाम शिनारी, ए आई आर 1969 एस सी 686
3. गणपति गौंडर बनाम इम्परर, ए आई आर 1932 मद्रास 214, 215, 33 क्रि० ला०ज० 557

95-M/J(D)127MofLJ&CA—4(a)

यहां पर हम यह कह सकते हैं कि हमारी प्रश्नावली पर प्राप्त उत्तरों में, अधिकांश अधिवक्ताओं और न्यायाधीशों ने तथा बहुसंख्यक पुलिस अधिकारियों ने भी यह विचार व्यक्त किया है कि ऐसे मामलों में मंजूरी, या तो आवश्यक नहीं है या अपेक्षित नहीं होनी चाहिए। (मद सं० 8)।

10.5 स्पष्टीकरण सिफारिश के लिए आवश्यकता

सैद्धांतिक रूप से जोरदार शब्दों में यह तर्क दिया जा सकता है कि मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित करने या लैंगिक अपराध करने जैसी प्रकृति के अभिरक्षान्तर्गत अपराधों का किसी लोक सेवक के पदीय कर्तव्यों से कोई संबंध नहीं है और धारा 197 उनको लागू नहीं हो सकती है। किन्तु (जैसा कि ऊपर कथित है) यह तथ्य हो, कि पहले धारा 197 के अधीन आश्रय लेने के ऐसे प्रयास किए जा चुके हैं; और इस बात की भी गंभीर संभावना है कि भविष्य में भी ऐसे प्रयास किए जाते रहेंगे, स्पष्टीकारक संशोधन का औचित्यकारक प्रतीत होगा। लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के सफल अभियोजन के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं और विचारण में ऐसे अपराधियों के प्रयासों को शून्य करने के अभियोजन के रोध के रूप में कार्यशील एक उपबंध को अनुज्ञात करके उन कठिनाइयों में एक कठिनाई और जोड़ देना ठीक नहीं होगा। अतः हमारी सिफारिश यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197(1) के नीचे, निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाना चाहिए।

> "स्पष्टीकरण : शंकाओं के परिवर्जन के लिए, इसके द्वारा घोषित किया जाता है कि इस धारा के उपबंध, किसी न्यायाधीश या किसी लोक सेवक द्वारा किए गए अपराध को, जो उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की बाबत किया गया मानव शरीर के विरुद्ध अपराध है, या किसी ऐसे अपराध को, जो प्राधिकार का दुरुपयोग गठित करता है, लागू नहीं होते हैं।"

अध्याय 11

साक्ष्य विधि

11.1 भूमिका

प्रायः कहा जाता है कि तथ्य, विधि के नौ मुद्दे गठित करते हैं। दांडिक अभियोजनों के मामलों में तो यह और भी सच है जहां न्यायालय में मौखिक साक्ष्य देने वाले साक्षियों के माध्यम से साक्ष्यों का एक विशाल प्रपुंज न्यायालय में आ जाता है, जो सिविल विचारण के मामले से पूर्णतः भिन्न है जहां दस्तावेजी साक्ष्य, कब्जे के साक्ष्य, लेखा-बहियों में प्रविष्टियों, लोक अधिकारियों द्वारा जारी किए गए प्रमाण-पत्रों वाणिज्यिक प्रथाओं, कुटुंब के सदस्यों के पास उपलब्ध ज्ञान और जानकारी इत्यादि के रूप में कुछ विश्वसनीय सामग्री ही उपलब्ध होगी। इसके अतिरिक्त, किसी दांडिक विचारण में, कतिपय विशेष नियम लागू होते हैं। विशिष्टतया, न्यायिक व्यवहार के अनुसार, साक्ष्य की प्रमाला या सापेक्षतः दांडिक विचारण में सबूत का मानक, सिविल वाद में जैसा अपेक्षित है, उससे उच्चतर होता है। इसके अतिरिक्त दांडिक अभियोजन की शक्ति के दुरुपयोग के दीर्घकालीन इतिहास ने विश्व के अनेक देशों को, जिनमें भारत भी है, उनके संविधान में ऐसे व्यापक संरक्षण निगमित करने के लिए प्रेरित किया है जो सिविल वाद की अपेक्षा, दांडिक अभियोजन में अधिक बारबार प्रवर्तित होते हैं।

11.2 यातना आदि के लिए अभियोजन

पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित, साक्ष्य की विधि के प्रतिनिदेश से, किसी दांडिक आरोप के विशेष लक्षण वहां और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं जहां अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के लिए किसी पुलिस अधिकारी को अभियोजित किया जाना है। व्यापक अर्थ में यदि इसका (धारा 101 से धारा 104 तक साक्ष्य अधिनियम) उल्लेख करें, तो अभियोजन को अपराधी का अपराध साबित करना चाहिए। यह समस्या उस विशिष्ट स्थिति के कारण अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के संदर्भ में प्रकाश में लाई जाती है जिसमें ऐसे अपराध प्रायः किए जाते हैं। वर्ष 1985 के एक निर्णय में[1] उच्चतम न्यायालय ने इस विषय की गंभीरता पर ध्यान दिया है; जिसके परिप्रेक्ष्य में विधि आयोग ने कतिपय स्थितियों में पुलिस अधिकारियों के अभियोजन पर एक पृथक् रिपोर्ट तैयार और अग्रेषित की है।[2] यह मामला, पुलिस अभिरक्षा में एक संदिग्ध व्यक्ति को यातना की अत्यधिक वीभत्स घटना से सम्बद्ध था जिसमें उस व्यक्ति की, उसकी गिरफ्तारी के लगभग छह घंटे के भीतर मृत्यु हो गई थी। जब गिरफ्तारी के दो घंटे के पश्चात् उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, तब उसे बुरी तरह से क्षतिग्रस्त और गंभीर स्थिति में पाया गया था। वस्तुतः वह, मजिस्ट्रेट के कक्ष तक चल कर जा भी नहीं सका था, मजिस्ट्रेट को बाहर आना पड़ा था और न्यायालय कक्ष के बरामदा में उसकी जांच करना पड़ी थी। मजिस्ट्रेट और कारावास के डाक्टर, दोनों को अभियुक्त द्वारा पुलिस कांस्टेबुल द्वारा की गई पिटाई के बारे में बतलाया गया था। सेशन न्यायालय द्वारा कांस्टेबुल को हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध के लिए (भारतीय दंड संहिता की धारा 304) सिद्धदोष ठहराया गया था। मामला अपील के प्राधिक अधिकारीतंत्र से हो कर गुजरा था जिससे हमारा कोई संबंध नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने ही स्थिति की अत्यधिक विलक्षण प्रकृति पर जोर दिया था जहां अन्य कोई नहीं अपितु मात्र वह पुलिस अधिकारी ही जिसकी अभिरक्षा में वह था, उन परिस्थितियों की बाबत साक्ष्य दे सकता है जिसमें उस व्यक्ति को अभिरक्षा में इतनी क्षति हुई थी इस प्रकार, ऐसे व्यक्ति, जिन पर पुलिस थाने में पुलिस द्वारा अत्याचार किए जाते हैं, यह साबित करने के लिए किसी साक्ष्य के बिना (सिवाय उनके अपने कथन के) रह जाते हैं कि अपराधी कौन हैं? इसी कारण न्यायालय ने ऐसे मामलों में सबूत के भार की विधि की पुनः परीक्षा करने के लिए कहा था। जैसा ऊपर उल्लिखित है, इस निर्णय के पश्चात् भारत के विधि आयोग ने अभिरक्षा में हुई क्षतियों के बारे में कार्रवाई के लिए एक विनिर्दिष्ट सिफारिश की थी, जिसके संबंध में अगले पैरा में निर्देश करेंगे।

---

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव, ए आई आर 1985 एस सी 416
2. भारत का विधि आयोग, "पुलिस अभिरक्षा में क्षति" पर 113वीं रिपोर्ट

11.3 विधि आयोग की सिफारिश (एक सौ तेहरवीं रिपोर्ट)

पूर्ववर्ती पैरा में निर्दिष्ट उ० प्र० राज्य बनाम राम सागर यादव में निर्णय के पश्चात् भारत के विधि आयोग ने विधि के सर्वेक्षण के पश्चात्, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में, निम्नवत् एक नई धारा अन्तःस्थापित करने के लिए सिफारिश की थी :—

> "114ख. (1) किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के अभिकथित किसी कृत्य द्वारा गठित किसी अपराध के लिए किसी पुलिस अधिकारी के अभियोजन में, यदि यह साक्ष्य है कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि क्षति, उस व्यक्ति की अभिरक्षा रखने वाले पुलिस अधिकारी द्वारा उस अवधि के दौरान कारित की गई थी।
>
> (2) न्यायालय को यह विनिश्चय करने में कि उपधारा (1) के अधीन उपधारणा की जानी चाहिए या नहीं, सभी सुसंगत परिस्थितियों का विशिष्टतः (क) अभिरक्षा की अवधि (ख) शिकार व्यक्ति द्वारा किए गए कथन का कि इसे किस प्रकार क्षति हुई थी, जो साक्ष्य में ग्राह्य कथन होगा, (ग) किसी ऐसे चिकित्सा व्यवसायी के साक्ष्य का जिसने शिकार व्यक्ति की परीक्षा की हो, और (घ) किसी ऐसे मजिस्ट्रेट के साक्ष्य का जिसने शिकार व्यक्ति का बयान अभिलिखित किया हो या उसे अभिलिखित करने का प्रयास किया हो, आश्रय लेना होगा।"

11.4 परवर्ती विनिश्चय

यह उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय और विधि आयोग की उक्त अनुवर्ती सिफारिश के पश्चात् ऐसे मामलों में सबूत के भार का प्रश्न न्यायालयों के समक्ष कई बार आया। ऐसे मामलों में से एक मामले में[3] निम्नलिखित प्रेक्षण विद्यमान है :—

> "यदि कोई व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में है, तब उसके साथ जो कुछ हुआ है वह विशिष्टतया उन पुलिस अधिकारियों की जानकारी के भीतर हुआ है जिन्होंने उसे अभिरक्षा में लिया है। जब यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त विश्वास दिलाने वाली साक्ष्य है कि मृतक की अभियुक्त द्वारा कारित क्षतियों के कारण मृत्यु हुई थी तब परिस्थितियां केवल इसी अप्रतिरोध्य निष्कर्ष की ओर ले जाएगी कि जिस पुलिस अधिकारी ने मृत्यु कारित की थी उसी ने शरीर का विलोपन भी कारित किया होगा।"

एक अन्य मामले में[4], जहां पुलिस अभिरक्षा में लिए गए शिकार व्यक्तियों को दूसरे दिन पुलिस चौकी के निकट एक स्थान पर मृत पाया गया था, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि यह भार राज्य पर था कि शिकार व्यक्ति को इस प्रकार की क्षति कैसे हुई जिनके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई थी। सबूत के भार की बाबत नियम में परिवर्तन की आवश्यकता पर इस मामले में भी जोर दिया गया था।

11.5 धारा 114 के संशोधन के लिए सिफारिश

इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती पैराओं में अंतर्विष्ट सामग्री के परिप्रेक्ष्य में, हमारा यह सशक्त मत है कि विधि आयोग द्वारा उसकी 113वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश का, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 114ख के अंतःस्थापन द्वारा पालन किया जाना चाहिए और हम प्रवर्धन के रूप में दो बातें और जोड़ना चाहेंगे। प्रथम स्थान, उपबंध में विनिर्दिष्टतः मृत्यु को जोड़ा जाना चाहिए हालांकि वह उस प्रारूप में विवक्षित है जिसकी सिफारिश पूर्ववर्ती रिपोर्ट में की गई थी। द्वितीयतः नई धारा के उपबंध, ऐसे प्रत्येक लोक सेवक को लागू किए जाने चाहिए जिनके पास विधि के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में निरुद्ध रखने की शक्ति है। धारा का वास्तविक स्थानन, हम प्रारूपकार पर छोड़ते हैं। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि हमारी प्रश्नावली के उत्तर में, बहुसंख्यक लोगों ने ऐसी खंडनीय उपधारणा का पक्ष लिया है (मद सं० 4)।

---

3. भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य (1992) 3 एस सी सी 249

4. नालीवला बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (1993) 2 एस सी सी 746

11.6 धारा 27, साक्ष्य अधिनियम

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में संस्वीकृति और विशिष्टतः वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत उपबंध उस अधिनियम की धारा 25, 26 और 27 में अंतर्विष्ट हैं। जब कि धारा 25 और धारा 26 किसी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को की गई संस्वीकृतियां या किसी व्यक्ति द्वारा जब वह अभिरक्षा में है, (पुलिस अधिकारी या अपर व्यक्ति को) की गई संस्वीकृतियां अपवर्जित करती हैं, जब कि धारा 27 उन मामलों की बाबत एक अपवाद का सृजन करती है जहां कोई संस्वीकृति, किसी तथ्य को पता लगाने की जानकारी के रूप में की गई है जो अभिरक्षा में किसी व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी है। इस धारा ने निर्वचन संबंधी अनेक समस्याएं पैदा कर दी हैं जो सम्प्रति, हमारी चिन्ता का विषय नहीं है। इस समय हमारा चिन्तन मुख्य रूप से इस संभावना से सम्बद्ध है कि जिसका धारा 27, दुष्प्रथा के अवलंब द्वारा दुरुपयोग का सृजन करती है :—

> "27. अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी—परन्तु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी एतद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी।"

यह धारा, चूंकि पूर्ववर्ती धारा या धाराओं द्वारा, किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा के दौरान की गई संस्वीकृतियों के संबंध में, अधिरोपित से अन्यथा प्रतिषेध के विरुद्ध एक बच निकलने वाला मार्ग गठित करती है, वहां पर भी उसके उपबंधों का आश्रय लेने के लिए आशयित है जहां अभिरक्षा में व्यक्ति वस्तुतः स्वेच्छा या जानकारी नहीं प्रदान करता है। इसे यदि और स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो पूर्ववर्ती उपबंधों में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी नियम के कारण नहीं आ सकता, उसे धारा 27 में के अनुज्ञेय नियम या समर्थकारी उपबंध का आश्रय लेकर लाए जाने के लिए अपेक्षित होगा। यदि धारा 27 में बताई गई जानकारी स्वेच्छया प्राप्त नहीं हो रही है तो पुलिस उसे अन्य साधनों द्वारा उपाप्त करने का अवलंब ले सकती है। कहने का आशय यह नहीं है कि हर मामले में जानकारी दिया जाना बाध्यकारी है। किन्तु यह बात सलाभ नहीं कही जा सकती कि धारा का मूल अस्तित्व ही (उस रूप में जिसमें वह अधिनियम में इस समय प्रतीत होती है) अवांछनीय या अवैध साधनों का आश्रय लेने की छाप या उत्कंठा का सृजन करता है। जिससे कि धारा का उपयोग उन स्थितियों में किया जाए कि जो विधायिका द्वारा कभी भी आशयित नहीं था। हमारा समाधान हो गया है कि धारा का, यदि निरसन नहीं किया जाता तो ऊपर लिखित सम्मान को पूरी तरह समाप्त करने के क्रम में संशोधन आवश्यक है।

उस व्याधि से मुक्ति पाने के लिए दो साधन खुले हैं। धारा 27 को पूर्णतः निरसित किया जा सकता है और यह हमारा पहला अधिमान है। किन्तु यदि यह साधन ग्राह्य नहीं है तो न्यूनतम, जो किया जा सकता है, वह धारा को पुनरीक्षित किया जाना है ताकि इसे इतना परिसीमित किया जा सके कि यह पता लगे तथ्य तक ग्राह्य रहे, और जानकारी के लिए नहीं। यह विकल्प, यद्यपि कुछ कम कठोर है, फिर भी एक संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किए जाने पर अधिक बोधगम्य बन जाएगा। विश्लेषण निम्नवत् हैं :—

(i) दांडिक विचारण, उन तथ्यों के सबूत से सम्बद्ध है जो विवाद्यक हैं।

(ii) यदि विवाद्यक के तथ्य प्रत्यक्षतः साबित नहीं किए जा सकते तो विधि उन्हें, विधि द्वारा सुसंगत घोषित किए जाने वाले तथ्यों द्वारा साबित किए जाने के लिए अनुज्ञात कर सकती है।

(iii) यदि पता लगाने से सम्बद्ध कोई तथ्य, जैसे शिकार व्यक्ति के आयुध का पता लगाना वस्त्रों, आदि का पता लगाना, या कोई अन्य सुसंगत तथ्य, उस व्यक्ति द्वारा दी गई तथा कथित जानकारी का परिणाम है तो विचारण की अपेक्षाएं अभिलेख पर पता लगने के तथ्य को लेकर (यह उपधारणा करके कि यह सुसंगत तथ्य है) संतुष्ट हो जाएगी।

(iv) विधि को आगे बढ़ने और जानकारी के संस्वीकृति भाग को ग्राह्य मानने की जरूरत नहीं है। ऊपर कथित कारणों से संस्वीकृति भाग अधिकांशतः प्रपीड़न और यातना से निर्बंधित कर दिया जाता है भले ही वह प्रत्यक्षतः न दिखलाई पड़ता हो।

(v) जानकारी वाला भाग, यदि यह संस्वीकृति के तुल्य नहीं है तो सिद्धांत रूप में यह आपत्तिजनक नहीं है किन्तु व्यवहार में, जानकारी तत्व और संस्वीकृति तत्व को एक-दूसरे से पृथक् रखना आसान नहीं है।

अतः, धारा 27 का मात्र संशोधन (और इसके पूर्ण निरसन का नहीं) का मृदुतर विकल्प ही अपनाया जाना है। हमारी सिफारिश है कि धारा 27 को निम्नलिखित धारा द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए :—

"27. **अभियुक्त की प्रेरणा पर तथ्यों का पता चलना**—जब किसी सुसंगत तथ्य का, किसी अपराध के अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप पता चलने का अभिसाक्ष्य दिया जाता है, चाहे ऐसा व्यक्ति पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में हो या न हो, तब पता चले हुए तथ्य को साबित किया जा सकता है किन्तु जानकारी को नहीं, चाहे वह संस्वीकृति के तुल्य हो या न हो।"

11.7 अन्य अधिकारियों को धारा 25 और 26 के विस्तारण की सिफारिश

हमारा यह भी अभिमत है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी उपबंधों का, जो इस समय पुलिस अधिकारियों तक परिसीमित हैं, उन सभी लोक सेवकों पर विस्तार किया जाना चाहिए जिन्हें व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और अभिरक्षा में निरुद्ध करने की शक्ति है। यदि यह सिफारिश स्वीकार की जाती है तो इसके अनुसरण में यह है कि अधिनियम की धारा 27 का (जब तक कि इसे हमारे पहले विकल्प के अनुसार निरसित नहीं कर दिया जाता है) विस्तार (पूर्ववर्ती पैरा में हमारी दूसरी वैकल्पिक सिफारिश के अनुसार अन्य बिन्दुओं पर इसका संशोधन करने के पश्चात्) ऐसे लोक सेवकों को भी किया जाना चाहिए।

अध्याय 12

प्रतिकर

12.1 भूमिका

पूर्ववर्ती अध्यायों में से एक अध्याय में जैसा उपदर्शित किया गया है—तदनुसार अभिरक्षान्तर्गत अपराधों की बाबत विधिक कारवाई, निवारक, अन्वेषणपरक, दाण्डिक या उपचारात्मक हो सकती है। इस अध्याय में, हम अभिरक्षान्तर्गत अपराध के शिकार व्यक्ति या (उसकी मृत्यु की दशा में) उसके आश्रितों को दिए जाने वाले प्रतिकर के रूप में उपचार पर विचार करेंगे।

12.2 साधारण विधि

साधारण विधि, प्राथमिकतः अपकृत्य विधि के अधीन प्रतिकर उपलभ्य है और इसका शिकार व्यक्ति की प्रेरणा पर, मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध दावा किया जा सकता है, परन्तु यह तब जबकि उस संबंध में सिविल दायित्व की अपेक्षाएं पूरी हो जाती हैं। मोटर यान अधिनियम, 1938, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 और लोक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 जैसी कुछ विशेष अधिनियमितियों के अतिरिक्त यह विषय सुसंगत विधान द्वारा यथा उपांतरित या अनुपूरित अपकृत्य विधि के सिद्धांतों द्वारा आधारिक रूप से शासित होता है। सदोष मृत्यु के मामले में, घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 ही वह अधिनियम है, जो साधारणतः लागू होता है। अधिनियम अनिवार्यतः उस संबंध में है जिसे "सदोष मृत्यु" कहा जा सकता है, एक ऐसा पक्ष जो सुविधाजनक और संक्षिप्त वाक्यांश "सदोष कृत्य", उपेक्षा या त्रुटि" द्वारा व्यक्त किया जाता है। हमें वर्तमान प्रयोजन के लिए अधिनियम की अंतर्वस्तु के ब्यौरों पर चर्चा करने की जरूरत नहीं है किन्तु यह नोट करना ही पर्याप्त होगा कि इस अधिनियम का दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 (1) (ग) में विनिर्दिष्ट रूप से निर्देश किया गया है।

12.3 अपकृत्य में प्रतिकर के लिए राज्य का दायित्व

भारत में अपकृत्य की साधारण विधि अर्थात् न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण के सिद्धांत पर भारत में यथा आधारित इंगलिश कामन ला, उसके कानूनी उपांतरणों सहित विधि, प्रवर्तन में है। संविधान का अनुच्छेद 300, संघ और साथ ही राज्य सरकार के विरुद्ध वाद फाइल करने के लिए उपबंध करता है अनुच्छेद के दूसरे भाग में, अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन रहते हुए राज्य अपने कार्यकलाप के संबंध में उसी प्रकार वाद ला सकेगा या उस पर किसी प्रकार वाद लाया जा सकेगा, जिस प्रकार यदि यह संविधान अधिनियमित न किया गया होता तो तत्स्थानी प्रान्त वाद ला सकता था उस पर वाद लाया जा सकता था। इस प्रकार, यदि अपकृत्य में किसी सरकार के विरुद्ध वाद लाया जाना है, तो वाद तभी लाया जा सकता है जब ऐसा वाद तत्स्थानी उपबंधों के अधीन, लाया जा सकता, यदि यह संविधान अधिनियमित किया गया होता। अनुच्छेद अनुध्यात करता है कि समुचित विधायिका इस बाबत विधि अधिनियमित करेगी। तथापि, विधायिका ने अनुच्छेद 300 के अधीन यथा अनुध्यात कोई विधि नहीं बनाई है। प्रश्न यह है कि क्या अपकृत्य में नुकसानी के लिए सरकार, व्यथित नागरिक की प्रेरणा पर वाद लाए जाने के लिए दायी है, यह बात विधायी कृत्य की अविद्यमानता के कारण असमंजस और भ्रम में बनी रहती है। सामान्यतः कल्याणकारी राज्य में, अपकृत्य में नुकसानी के लिए वाद, व्यष्टि को क्षति कारित करने वाले राज्य और उसके सेवकों के विरुद्ध चलाने योग्य होना चाहिए। किन्तु अनुच्छेद 300 द्वारा यथा अनुध्यात, समुचित विधान के अभाव में, दायित्व वही रहता है जैसा वह संविधान के, अधिनियमन के पूर्व विद्यमान था।

संविधान के पूर्व, इंगलैण्ड के कामन ला का सिद्धांत कि राजा कोई गलती नहीं करता है और वह उपेक्षा या कदाचार के लिए दायी नहीं हो सकता, परिणामस्वरूप वह अपने सेवकों की अपेक्षा या उनके कदाचार के लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता था, प्रचलन में था। यह सिद्धांत इस आधार वाक्य पर आधारित था कि राज्य अपने शासकीय कृत्यों के प्रयोग में किसी व्यष्टि को कारित नुकसानी के लिए दायी नहीं था। तथापि, इंग्लैण्ड में यह विधिक स्थिति, तात्विक रूप से क्राउन प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1947 द्वारा परिवर्तित हो गई है। वहां विधि को उदार बनाया गया है और शासकीय तथा अशासकीय कृत्यों के बीच और

सरकारी या गैर सरकारी कृत्यों के बीच अब कोई विभेद, राज्य के दायित्व की अवधारणा करने के लिए प्रचलन में नहीं रह गया है। भारत में ऐसे ही कदम नहीं उठाए गए थे। भारत के विधि आयोग ने अपकृत्य में राज्य के दायित्व के प्रश्न पर विचार किया था और यह सिफारिश की थी कि अनुच्छेद 300 के अधीन नागरिकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए विधि अधिनियमित करना आवश्यक था क्योंकि इंग्लैण्ड में भी क्राउन की उन्मुक्ति सार्थिक रूप से घटा दी गई थी[1]। विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि राज्य को उसके कर्मचारियों द्वारा, उनके नियोजन के क्षेत्र के भीतर कृत्य करते समय, अपकृत्यों के लिए, उत्तरदायित्व द्वारा अधिरोपित देखभाल के कर्त्तव्यों की बाबत आयोग ने सिफारिश की थी कि यदि किसी परिनियम ने ऐसे कार्य का किया जाना प्राधिकृत किया था जो अपने आप में क्षतिकारक था, तो राज्य को दायी नहीं होना चाहिए किन्तु राज्य को उस पर या उसके कर्मचारियों पर अधिरोपित कानूनी कर्त्तव्य के भंग के लिए ऐसी उपेक्षा के सबूत के बिना दायी होना चाहिए जो नुकसान कारित कर सकता है। आयोग ने यह और सिफारिश की थी कि यदि राज्य या उसके कर्मचारी उस/उन पर अधिरोपित कानूनी कर्त्तव्यों के निर्वहन में उपेक्षापूर्वक या विद्वेषपूर्वक कार्य करते हैं और ऐसे कर्त्तव्य के प्रयोग में कोई विवेक अंतर्वलित है या नहीं, तो भी राज्य को दायी होना चाहिए। आयोग द्वारा की गई सिफारिशों, फिर भी, अभी तक कार्यान्वित नहीं की गई हैं और सिफारिश की गई विधि अधिनियमित नहीं की गई है जिसका परिणाम यह है कि राज्य की उसके सेवकों के अपकृत्यों के लिए दायित्व के प्रश्न पर पर्याप्त मात्रा में अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है। इस निमित्त आयोग की सिफारिशों को दोहराते हैं और सिफारिश करते है कि यथा सुझाई गई सुसंगत विधि अधिनियमित की जानी चाहिए।

12.4 अपकृत्य दायित्व के प्रश्न पर राज्य के न्यायिक विनिश्चय

विधायी शक्ति के प्रयोग के अभाव में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय अपने न्यायिक नयाचारों द्वारा राज्य के लोक सेवकों के अपकृत्य के लिए राज्य के विरुद्ध नुकसानियों के अवार्ड किए हैं। उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम श्रीमती विद्यावती[2] के मामले में उस सरकारी कार द्वारा कारित क्षति के लिए नुकसानी प्रदान की थी जो राजस्थान राज्य के कर्मचारी द्वारा उतावलेपन से और उपेक्षापूर्वक चलाई जा रही थी। उच्चतम न्यायालय ने राज्य के सेवकों द्वारा, उनके नियोजन के क्षेत्र के भीतर किए गए अपकृत्यों की बाबत नुकसानी का दायित्व अभिनिर्धारित किया था। विद्यावती के मामले में अपनाया गया दृष्टिकोण, यद्यपि बाद में कस्तूरी लाल के मामले में[3] उच्चतम न्यायलय की संविधान पीठ द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था।

उस मामले के तथ्य यह थे कि वादी कस्तूरी लाल को पुलिस द्वारा चुराई गई सम्पत्ति के संदेह पर गिरफ्तार किया गया था और वादी की शरीर की तलाशी लेकर काफी मात्रा में सोना अधिगृहीत किया गया और माल खाने में रखा गया था। वादी ने अपनी निर्मुक्ति पर उससे अधिगृहीत सोने की वापसी के के लिए दावा किया था किन्तु वह सोना इस आधार पर नहीं लौटाया गया था कि हैडकांस्टेबल उससे अधिगृहीत सोने सहित गायब हो गया था। सोने की वापसी या वादी को कारित हानि के लिए नुकसानी के विकल्प हेतु वादी द्वारा राज्य के विरुद्ध वाद लाए जाने पर विचारण न्यायालय ने उसको डिक्री प्रदान की। अपील पर, उच्च न्यायलय ने डिक्री अपास्त कर दी। वादी ने उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने सावरेन उन्मुक्ति के सिद्धांत पर निर्भर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अनुच्छेद 300 द्वारा यथाअनुध्यात विधि अधिनियमित नहीं की गई थी अतः वाद राज्य की उन्मुक्ति के आधार पर उसके सेवकों के अपकृत्यों के लिए चलाने योग्य नहीं था। न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि सावरेन उन्मुक्ति के सिद्धांत का भारत में कामन ला के सिद्धांत के आधार पर अनुसरण किया गया है जो राज्य के विरुद्ध उसके सेवकों द्वारा किए गए अपकृत्यों के लिए दावों की बाबत इंग्लैण्ड में प्रचलन में थे। न्यायालय ने यह और अभिनिर्धारित किया कि यह उन्मुक्ति उन नुकसानियों की बाबत थी जो सेवकों के उपेक्षा या विद्वेषपूर्ण कृत्यों द्वारा कारित क्षति की पारिणामिक थी यदि नियोजन सावरेन पावर को निर्देशनीय था। न्यायालय ने विधायी शक्ति का प्रयोग न किए जाने को निर्देशित किया और निम्नलिखित शब्दों में अपनी चिंता व्यक्त की :—

1. "अपकृत्य में राज्य का दायित्व" पर भारत के विधि आयोग की पहली रिपोर्ट।
2. ए आई आर 1962 एस सी 993
3. कस्तूरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए आई आर 1965 एस सी 1039

"इस अपील पर कार्यवाही करते समय हम इस विचार द्वारा विक्षुब्ध हो गए हैं कि उस नागरिक को जिसकी सम्पत्ति विधि की प्रक्रिया द्वारा अधिगृहीत की गई थी, जब उसने न्यायलय से इस आधार पर परितोष की मांग की कि उसकी सम्पत्ति उसे वापस नहीं लौटाई गई है, यह बताया गया है कि वह राज्य के विरुद्ध कोई दावा नहीं कर सकता है तब हम यह सोचते हैं कि यह विधि कि संतोषजनक स्थिति नहीं है। तथापि इस स्थिति को सुधारने का उपाय विधायिका के हाथों में हैं।"

खेद है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई चिंता और विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों दोनों पर ही ध्यान नहीं दिया गया है क्योंकि अभी तक कोई भी विधि अधिनियमित नहीं की गई है। परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा कस्तूरी लाल के मामले में अधिकथित विधि ही इस क्षेत्र में विद्यमान है।

12.4 (क) * * * * * * * * *

तथापि उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ताओं को राज्य के सेवकों के अपकृत्य के कारण और उनके मूल अधिकारों के अतिलंघन के लिए प्रतिकर का संदाय करने के लिए राज्य के दायी होने के आधार पर भी नुकसानी प्रदान की है। विनिश्चित मामलों के सर्वेक्षण से यह पता लगेगा कि उच्चतम न्यायलय ने अपनी न्यायिक क्रियाविद भूमिका में लोक सेवकों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के शिकार व्यक्तियों को परित्राण देने के लिए दो तरीके अपनाए हैं जो शिकार व्यक्तियों के लिए सुखद हैं, प्रतिकर के अधिकार के रूप में और राज्य को उसके सेवकों की उपेक्षा के लिए शास्ति के रूप में। हम इन सभी मामलों पर विस्तृत रूप में चर्चा करना आवश्यक नहीं समझते हैं तथापि उनमें से कुछ[4-15] के प्रति एक संक्षिप्त निर्देश दिया जा सकता है। उच्च न्यायलयों ने भी संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रतिकर प्रदान किए है[16-17] संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अनुतोष मंजूर करने के अतिरिक्त, उच्चतम न्यायलय ने अनेक मामलों में राज्य के विरुद्ध पीड़ित व्यक्ति को नुकसानी का दिया जाना ही अभिनिर्धारित किया है[18-19]।

नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (1993, 2 एस सी सी 476) में उच्चतम न्यायालय ने कस्तूरी लाल के मामले में किए गए अपने विनिश्चय को निर्दिशित किया और यह संप्रेक्षण किया कि सावरेन उन्मुक्ति का सिद्धांत किसी लोक विधि के अधीन किसी दावे को लागू नहीं होता है और तदनुसार न्यायालय ने उड़ीसा राज्य को याची को अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु के मामले में नुकसानी का संदाय करने का निर्देश दिया क्योंकि राज्य ने संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिलंघन किया था। न्यायालय ने सर्वेक्षण किया कि राज्य को क्षति पूरित किए जाने का और ऐसी कार्रवाई करने का जो विधि के अनुसार दोषकर्ता के विरुद्ध उपलभ्य हो सकता है अधिकार था। न्यायिक विनिश्चयों के संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह पता चलेगा कि यद्यपि तकनीकी रूप से कस्तूरी लाल का मामला अभी भी इस क्षेत्र में विद्यमान है फिर भी न्यायालय व्यथित व्यक्तियों

4. राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती, ए आई आर 1962 एस सी 993
5. सरवासव पाटिल बनाम मैसूर राज्य, ए आई आर 1977 एस सी 1749
6. नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (1933) 2 एस सी सी 746
7. गुजरात राज्य बनाम मेमन मोहम्मद हाजी हुसेन, ए आई आर 1967 एस सी 1885
8. रुदल शाह बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1983 एस सी 1086
9. सेबस्टेन एम ओंगरे बनाम भारत संघ (1984) 1 एस सी सी 339
10. भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य 1989 अनु० एस सी सी 564
11. भीम सिंह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1985) 4 ए सी सी 677
12. सहेली बनाम पुलिस आयुक्त (1990) 1 एस सी सी 422
13. इन री सरबिन्द्र सिंह ग्रोवर की मृत्यु (1993) । 1 क्रि०ला०रि० 163 (एस सी)
14. वि० करपलम्मा बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, 1993 (1) एस सी ए एल ई 19
15. रेथीराम बनाम गुजरात राज्य 1993 (2) एस सी ए एल ई 631
16. रविकान्त बनाम पुलिस आयुक्त महाराष्ट्र राज्य, 1990 ए सी जे 1060
17. आर गांधी बनाम भारत संघ ए आई आर 1980 मद्रास 20
18. नलिनी भानोत बनाम पुलिस आयुक्त 1990 ए सी जे 345
19. सर वासव पाटिल बनाम मैसूर राज्य, ए आर आर 1997 एस सी 1749

को अनुतोष मंजूर करते रहे हैं किन्तु विधिक स्थिति स्पष्ट नहीं है अतः यह आवश्यक नहीं है कि सेवकों के अपकृत्यों के लिए राज्य के दायित्वों की बाबत कानूनी अधिनियमिति बनाई जाए।

12.5 प्रतिकर के दावा के लिए तंत्र

यह उपधारणा करते हुए कि अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु में पारिणामिक कोई भी आचरण या अभिरक्षा-न्तर्गत कोई अन्य अपराध गठित करने वाला आचरण अपकृत्य है, अपकृत्य विधि के अधीन नुकसानी का हकदार व्यक्ति साधारण प्रक्रिया के अधीन किसी सक्षम सिविल न्यायालय में दायी व्यक्तियों के विरुद्ध सिविल वाद फाइल कर सकता है। यह प्रश्न कि "दायी व्यक्ति कौन है," अपकृत्य विधि के सिद्धांतों के अनुरूप अवधारित किए जाने होंगे जो अन्य बातों के साथ-साथ, दायित्व की स्थिति (जिसमें भूल की अपेक्षा भी है,) दायित्व से उन्मुक्ति और सरकारी और गैर सरकारी अभिकरणों के प्रतिनिधिक दायित्व जैसे मामलों के लिए सुसंगत है। जैसा ऊपर बताया गया है स्थितियों की विशिष्ट किस्मों को लागू विशेष अधिनियमितियां अपकृत्य विधि से संबंधित विद्यमान साधारण नियम को सुदृढ़ या अनुपूरित कर सकेंगी।

12.6. संहिता की धारा 357

सिविल न्यायालय के तंत्र के अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 के उपबंधों का भी प्रयोग किया जा सकता है जिसके अधीन कोई दांडिक न्यायालय, कतिपय परिस्थितियों में, सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा प्रतिकर के संदाय का आदेश कर सकता है।[20] ऐसा आदेश केवल वहीं पारित नहीं किया जा सकता जहां जुर्माना अधिरोपित किया गया है [धारा 357 (1)] अपितु वहां भी किया जा सकता है जहां कोई अन्य दंड अधिरोपित किया गया है [धारा 357 (3)]

12.7 धारा 357क के अंतःस्थापन की सिफारिश

हमारे अभिमत में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में प्रतिकर की बाबत विनिर्दिष्ट उपबंध रखने के लिए यह उचित होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 357क अंतःस्थापित की जाए, जिसका प्रारूप नीचे दिया जा रहा है। हमारा आशय विनिर्दिष्ट रूप से दोषी अधिकारियों और सरकार के संयुक्त तथा पृथक् दायित्व के लिए उपबंध करना और प्रतिकर के निर्धारण में महत्वपूर्ण उपादानों को गणना में लिए जाने के लिए अभिकथित किया जाना है तदनुसार हम निम्नलिखित धारा की सिफारिश करते है :—

"धारा 357क, दंड प्रक्रिया संहिता

अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में प्रतिकर

(1) धारा 357 के उपबंधों के होते हुए भी जहां न्यायालय किसी लोक सेवक को ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराता है जिसका परिणाम मृत्यु या शारीरिक क्षति है और जो ऐसे लोक सेवक के किसी कृत्य द्वारा उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति के विरुद्ध गठित अपराध है वहां इस धारा के उपबंध लागू होंगे।

(2) न्यायालय किसी ऐसे मामले में, जिसे यह धारा लागू होती है, निर्णय पारित करते समय आदेश देगा कि वह सरकार जिसके कार्यकलाप के संबंध में ऐसा लोक सेवक उस समय नियोजित था जब ऐसा कृत्य किया गया था ऐसे लोक सेवक के साथ संयुक्ततः और पृथक्तः प्रतिकर के रूप में ऐसी रकम का संदाय करने के लिए दायी होगी जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जा सकेगी।

(3) इस धारा के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए कोई आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा या सेसन न्यायालय द्वारा जब वहां पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, भी किया जा सकेगा।

(4) उसी विषय से संबंधित किसी पश्चात्वर्ती वाद में प्रतिकर प्रदान करते समय सिविल न्यायालय इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई किसी राशि को गणना में लेगा।

(5) इस धारा के अधीन प्रदान की गई रकम निम्नलिखित से कम नहीं होगी :—

(क) शारीरिक क्षति जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, के मामले में 25,000 रुपए।

(ख) मृत्यु के मामले में एक लाख रुपए।

---

20. देखिए पैरा 3.29 पश्चोक्त

(6) इस धारा के अधीन प्रतिकर की रकम निश्चित करने में न्यायालय, उपधारा (5) के अधीन रहते हुए, सभी सुसंगत परिस्थितियों को जिनके अंतर्गत निम्नलिखित परिस्थितियां भी हैं (किन्तु जो अनिवार्यतः उन्हीं तक सीमित नहीं हैं) गणना में लेगा :

(क) शिकार व्यक्ति द्वारा भोगी गई क्षति की किस्म और गंभीरता;

(ख) शिकार व्यक्ति द्वारा भोगा गया अनावश्यक संत्रास;

(ग) शिकार व्यक्ति के उपचार और पुनर्वास पर उपगत या उपगत होने के लिए संभाव्य व्यय;

(घ) शिकार व्यक्ति की वास्तविक और संभावित उपार्जन क्षमता तथा प्रतिकर के हकदार व्यक्तियों और कुटुंब के अन्य सदस्यों पर उसकी हानि का प्रभाव;

(ङ) वह सीमा, यदि कोई है जिस तक शिकार व्यक्ति स्वयं क्षति के लिए जिम्मेदार था;

(च) मामले के अभियोजन में उपगत खर्च।

(7) शिकार व्यक्ति की मृत्यु या उसकी स्थायी निःशक्तता की दशा में, न्यायालय शिकार व्यक्ति के अनुमानित वार्षिक आय को, जो उसके अनुमानित जीवन काल के वर्षों की संख्या से गुणा करके अभिप्राप्त की जाए, गणना में ले सकेगा।

(8) कार्यवाही के अंतिम अवधारण के लंबित रहते हुए न्यायालय अंतरिम अनुतोष के रूप में ऐसे प्रतिकर का अवार्ड कर सकेगा जो वह मामले के किसी प्रक्रम पर, सिद्धदोष का निर्णय पारित किए जाने पर भी मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

(9) सरकार अपकारी लोक सेवक से उसके द्वारा प्रतिकर के रूप में इस धारा के अधीन संदत्त कोई रकम, पूर्णतः या भागतः, जैसा भी वह ठीक समझे, वसूल कर सकेगी।"

---

12 आई आर 1962 एस सी।

अध्याय 13

पुलिस का संगठन

13.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में हमने पुलिस और अन्य लोक अधिकारियों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग से उद्भूत होने वाले अधिरक्षात्मक अपराधों के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की है। पुलिस कठघरे में है, दिन प्रतिदिन इसे बढ़ते हुए, गंभीर लोक आलोचना का सामना करना पड़ रहा है। अक्षमता, भ्रष्टाचार, निष्ठुरता, मानव अधिकारों के उल्लंघन, सांप्रदायिकता, विधिविरुद्ध और पक्षपात पूर्ण व्यवहार के अभिकथन अक्सर पुलिस के विरुद्ध किए जाते हैं। किन्तु किसी को यह भावना नहीं रखनी चाहिए कि सभी पुलिस वाले "खून के प्यासे कुत्ते हैं"। पुलिस एक अनिवार्य संगठन है जो विधि और व्यवस्था बनाए रखने तथा अपराधों के निवारण के लिए कार्यपालिका का एक भाग है। पुलिस सभ्य समाज के लिए एक आवश्यकता है। नागरिक, सुरक्षा और संरक्षण के लिए पुलिस की ओर देखते हैं और इसने समाज की भरपूर सेवा की है। भारत में पुलिस जनता की सेवा में अपनी प्रभावी भूमिका निभाने में समर्थ नहीं रही है इस अध्याय में पुलिस संगठन से संबंधित कुछ विषयों पर चर्चा करने का प्रस्ताव है। यद्यपि यह रिपोर्ट पुलिस बल के संगठन के संबंध में नहीं है किन्तु हम कुछ बातों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं जो अपराधों के अन्वेषण से संबंधित अनाचार के लिए जिम्मेदार हैं क्योंकि हमारी राय में जब तक उन बातों का निराकरण नहीं किया जाता है तब तक संपूर्ण पुलिस इस व्याधि से पीड़ित रहेगी और उसके लिए अपने को लोगों की सेवा के उपकरण के रूप में बदलना कठिन होगा।

13.2 ब्रिटिश शासन के अधीन पुलिस की भूमिका

भारत में वर्तमान पुलिस प्रणाली ब्रिटिश से उत्तराधिकार में मिली है। यह ब्रिटिश सरकार द्वारा सृजित की गई है और दक्षता तथा देश के विधि के प्रति अधीनता के मूलभूत आदर्श पर आधारित है। ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस की भूमिका पुलिस अधिनियम, 1861 द्वारा प्रतिष्ठापित भूमिका तक सीमित थी। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पुलिस को अपराध के निवारण और पता लगाने के लिए दक्ष उपकरण बनाना और इसे विदेशी सरकार के अधीन ऐसे प्रभावी हथियार के रूप में उपयोग करना था जो उसके प्राधिकार को किसी भी चुनौती को सख्ती से दबा दे। उनकी सोच लोक सेवान्मुख नहीं थी बल्कि उनका शासन, यथास्थिति, बनाए रखना था। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस को तत्कालीन शासकों के कहने पर स्वतंत्रता संग्राम में लगे हमारे अपने लोगों के विरुद्ध प्रभावी दमनात्मक उपाय करने पड़ते थे जिसके परिणामस्वरूप पुलिस की छवि अत्यधिक विकृत हो गई और वह अत्याचारी तथा दमनात्मक के रूप में पहचानी जाने लगी।

13.3 स्वतंत्रता के पश्चात् पुलिस की भूमिका

भारत के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् भारत ने अपने को गणतंत्र घोषित किया। वह पुलिस राज्य नहीं रह गया बल्कि वह कल्याणकारी राज्य हो गया। संविधान ने नागरिकों को मूल अधिकारों की गारंटी दी और उसने नए विधानों, विशेष विधियों विनियमन उपाय तथा प्रगतिशील विधि सुधारों का अधिनियमन भी किया। इन अधिकतर विधियों के कार्यान्वयन और प्रवर्तन का कार्य पुलिस को सौंपा गया। अनेक विधियों में जिनके अंतर्गत आंतरिक सुरक्षा अधिनियम, भारत रक्षा अधिनियम, आतंकवादी और विध्वंसक क्रियाकलाप अधिनियम जैसे अध्युपाय हैं पुलिस को व्यापक वैवेकिक शक्तियां दी गई हैं। इन शक्तियों का प्रयोग मूल अधिकारों के अनुरूप तथा कानूनी उपबंधों के अनुसार किया जाना है। दुर्भाग्यवश पुलिस को नई चुनौती का सामना करने के लिए पुनर्गठित नहीं किया गया, वही भर्ती नीति, प्रशिक्षण और पदानुक्रम नियंत्रण जो ब्रिटिश काल में अपनाया गया था मूलरूप में आज भी प्रवृत है जिसके परिणामस्वरूप पुलिस समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं है।

हाल के वर्षों में पुलिस को विशेष रूप से विधि और व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति, सांप्रदायिक दंगे, राजनीतिक अशांति, छात्र आंदोलन, आतंकवादी क्रियाकलाप अधिकारियों और अन्यों के बीच अत्याधिक राजनीतिकरण, घूस और भ्रष्टाचार जैसे सफेदपोश अपराधों की बढ़ती हुई संख्या, करारोपवंचन, राजकोषीय विधियों के उल्लंघन तस्करी आदि की दृष्टि से कठिन और संवेदनशील कार्य करना पड़ता है। संगठित अपराधी गिरोहों ने समाज में मजबूत जड़ जमा लिया है। ऐसे आपराधिक गिरोह अत्याधुनिक आयुधों, विध्वंसकों और अन्य युक्तियों का प्रयोग करके वास्तविकता को इस कदर नष्ट कर देते हैं और अपराध के स्थान पर अत्यन्त या कोई साक्ष्य नहीं रह जाता। इसा प्रकार सशस्त्र और आतंकवादी समूहों से निपटना भी परंपरागत अपराधियों के निपटाने से बहुत भिन्न है। इस प्रवर्ग के अपराधी, अतिप्रशिक्षित, दृढ़ तथा अत्याधिक आयुधों से लैस होते हैं। एक सामान्य पुलिस वाला जो एक छोटी लाठी (रूलर) या चाहे बंदूक ही लेकर चलता हो आतंकवादियों की तीक्ष्ण गति का मुकाबला नहीं कर सकता। क्रियाकलापों और उत्तरदायित्वों का दायरा बढ़ जाने से पुलिस ऐसी चुनौतियों और संकटों से घिर गई है जिससे अनेक नई और महत्वपूर्ण समस्याएं पैदा हो जाती हैं जिसके लिए उन्हें प्रशिक्षित और सज्जित नहीं किया गया है, अतः लोगों को संविधान और मानव अधिकार मानदंडों के अनुसार सेवा करने में असफल हो जाते हैं।

पूर्वोक्त बातों के अतिरिक्त विधि और व्यवस्था, अतिमहत्वपूर्ण व्यक्तियों की ड्यूटी से संबंधित अत्यधिक दबाव और घोर परिश्रम तथा ड्यूटी की लंबी अवधि से पुलिस के पास अपराधों का पता लगाने के लिए, मामलों के अन्वेषण करने के लिए अत्यन्त कम समय रह जाता है। पुलिस उन्हें सौंपे गए कार्यों के कोटा के दबाव के अधीन शीघ्र परिणाम प्राप्त करने की इच्छा से चालित, धैर्य, अल्पभाषित और वैज्ञानिक पूछताछ का रास्ता छोड़ देते हैं जबकि वे संदेहास्पद व्यक्ति या अभियुक्त को विविध प्रकार के शारीरिक बल द्वारा दबाव डालते हैं कि वह उन्हें सभी ज्ञात तथ्यों को प्रकट कर दे। यद्यपि विधि पुलिस द्वारा अपनी ड्यूटी के अनुपालन में कुछ विनिर्दिष्ट अवसरों पर जैसे उपद्रवी भीड़ को तितर बितर करने या उपद्रवी दुष्कार्य करने वाले को गिरफ्तार करने में जो गिरफ्तारी से बचने का प्रयास करेगा, बल प्रयोग की आवश्यकता को मान्यता देती है, किन्तु वे अपनी अभिरक्षा में के व्यक्तियों के विरुद्ध बल प्रयोग करते हैं।

13.4 पुलिस आयोग की रिपोर्ट

भारतीय पुलिस आज अपने को न केवल संख्या बल में बल्कि अपने पर्याप्त अंतःसंरचनात्मक सुविधाओं जैसे आधुनिक आयुध, उपस्कर, संचार तंत्र और अधिक महत्वपूर्ण रूप में आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण में भी इसको विधि प्रवर्तन का दक्ष और प्रभावी उपकरण बनाने के लिए परमावश्यक है, अपने को निःशक्त पाती है, राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पुलिस प्रशासन की समस्याओं के सभी पहलुओं पर विचार किया है और इसने पुलिस संगठन में सुधार के लिए अनेक रिपोर्टें दी है, पुलिस आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट (जनवरी, 1980) में दक्ष पुलिस कार्य संपादन में सहायता के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करके अन्वेषण की पद्धति को आधुनिक बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इसने संचार, परिवहन, कंप्यूटरीकृत अभिलेख और न्यायालय संबंधी विज्ञान से सहायता के लिए उन्नत सुविधा के लिए भी सिफारिश की है। सिफारिशों में अधिक केन्द्रीय न्यायालय विज्ञान प्रयोगशालाएं और चिकित्सीय परीक्षण प्रयोगशालाओं, राज्य हस्तलिपि ब्यूरों और प्रादेशिक प्रयोगशालाओं को स्थापना पर जोर दिया है जिससे कि राज्य के सामान्य आपराधिक कार्य में अक्सर उद्भूत होने वाले विशेष प्रकार के मामलों को निपटाया जा सके। इसके केन्द्रीय अन्वेषण के प्रभारी गठन की सिफारिश की है, पुलिस आयोग ने सिफारिश की है कि प्रशिक्षण और अधिक वैज्ञानिक होना चाहिए अपने एक और रिपोर्ट द्वारा आयोग ने प्रशासनिक परिवर्तन करके पुलिस की प्रभाविकता और दक्षता में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें की हैं। पुलिस आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को पूर्णतया कार्यान्वित नहीं किया गया है। हमारी राय में, यदि पुलिस आयोग की रिपोर्ट कार्यान्वित कर दी जाती है तो पुलिस में विचलन के कारणों को काफी हद तक दूर किया जा सकेगा और शक्ति तथा अभिरक्षा में के व्यक्तियों पर अपराध के दुरुपयोग के अवसर कम हो जाएंगे।

13.5 अन्वेषण खंड को विधि और व्यवस्था खंड से पृथक् करने की आवश्यकता

भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित पुलिस बल से संबंधित अधिनियमितियां चाहे वह पुलिस अधिनियम, 1861 हों या पुलिस आस्थित करने वाले प्रांतीय अधिनियम अथवा राज्य अधिनियम हों, पुलिस बल के लिए मुख्य रूप से कम से कम दो अनुक्रम कार्य ध्यान में रखते हैं। पहला कार्य है विधि और व्यवस्था

बनाए रखना जबकि दूसरा कार्य है अपराधों का विशेष रूप से संज्ञेय अपराधों का अन्वेषण करना। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जब जनसंख्या कम थी अपराधों की दर ऊंची नहीं थी और तत्कालीन शासकों द्वारा शासित क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं था, उस समय इन क्षेत्रों को, रखने की आवश्यकता नहीं थी। अब स्थिति बदल गई है और हमें ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस के कृत्यों के निर्वहन में दक्षता और सत्यनिष्ठा दोनों कृत्यों के पृथक्करण की स्कीम आरंभ किए बिना युक्तियुक्त स्तर तक नहीं रखी जा सकती। यद्यपि इससे यह पूर्व अवधारणा बनती है कि प्रत्येक राज्य में पुलिस बल की संरचना और संगठन को पुनर्निर्मित करना पड़ेगा। ऐसा विषय है जिस पर हमारा विस्तार से चर्चा करने का प्रस्ताव नहीं है। किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि ऐसा परिवर्तन विभिन्न दृष्टिकोणों से आवश्यक है।

13.6 पुलिस संगठन से संबंधित सिफारिशें

हमारी यह राय है कि अपराधों के अन्वेषण के प्रक्रम में उत्पीड़न और अत्याचार की समस्या काफी हद तक इस तथ्य से होती है कि पुलिस अधिकारी जो अन्य कार्यों में व्यस्त रखे जाते हैं, उनके पास अपराधों के अन्वेषण के लिए न तो समय रहता है और वे अपने सर्वोत्तम बौद्धिक और शारीरिक संसाधन समर्पित करने का समय नहीं रख सकते हैं। मस्तिष्क की वह क्षमता जो अन्वेषण के समय भूमिका निभाने में प्रयोग की जानी चाहिए, उससे भिन्न होती है जो लोक व्यवस्था के भंग की तात्कालिक स्थिति से निपटने के लिए प्रयुक्त की जानी होती है। यह वांछनीय है कि अपराधों के अन्वेषण के लिए पृथक् खंड हो जिसमें आवश्यक विशेषज्ञता और सूझबूझ के ऐसे अधिकारी रखे जाएं जो संज्ञेय अपराधों का पता लगाने और अन्वेषण करने में पूर्णकालिक ऊर्जा लगा सकें। हमें पता है कि यह नई सोच नहीं है। हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि इसे सरलता से व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसके अतिरिक्त (संघ राज्यक्षेत्र को छोड़कर) इसे राज्य सरकारों द्वारा ही ठोस रूप दिया जा सकता है फिर भी हम इस संबंध में अपना दृष्टिकोण पुनः दुहराते हैं जिससे कि वैयक्तिक स्वतंत्रता और अन्य मूल अधिकारों का उद्देश्य केवल शासकीय निश्चेष्टता या अकर्मण्यता से दुष्प्रभावित न हो। स्कीम के कारण आरंभ में थोड़ा बहुत अतिरिक्त व्यय करना पड़ सकता है। किन्तु कालांतर में इससे न केवल समय और दोहरे कार्य से बचत होगी, बल्कि धन की भी बचत होगी। यदि इस संबंध में कोई कार्य अध्ययन किए जाने हैं तो उसे किया जा सकता है। उन राज्यों के, जिनमें ऐसी स्कीम अतीत में अपनाई जा चुकी हो, अनुभवों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। किन्तु उसी समय इस विचार को प्रारंभ में झटक नहीं देना चाहिए क्योंकि इसे अपनाने से एक ऐसी समस्या के हल के लिए काफी हद तक योगदान कर सकता है जिसने काफी समय से व्यक्तियों को चकरा दिया है और जो युक्तियुक्त समय में तब तक, समाप्त नहीं होगी जब तक कि अनेक मोर्चों पर उससे न निपटा जाएगा।

आयोग महसूस करता है कि पुलिस के कार्यकरण में सुधार लाने के लिए तत्काल उपाय किए जाने चाहिए। तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि निम्नलिखित उपाय किए जाएं :—

(i) अन्वेषण अभिकरण को विधि प्रवर्तन खंड से पृथक् किया जाना चाहिए।

(ii) अन्वेषण अभिकरण को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से आपराधिक और आर्थिक विधियों के प्रक्रियात्मक और दांडिक उपबंधों की गहरी जानकारी हो जाए और उन्हें आधुनिक परिष्कृत युक्तियों और उपकरणों में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

(iii) प्रशिक्षण कार्यक्रम में इस बात पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए जिसमें पुलिस बलों से यह अपेक्षा की जाए कि वे अपने कर्तव्य पालन में संविधान और मानव अधिकार तथा देश की विधियों का सम्मान करें; और

(v) पुलिस को अन्वेषण में नए विकास और तकनीक की जानकारी देने के लिए अभिनव और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

अध्याय 14

सिफारिशें

14.1 इस रिपोर्ट के पूर्वतर अध्यायों में जो चर्चा की गई है उसके प्रकाश में आयोग की यह राय है कि लोक सेवकों द्वारा अभिरक्षा में प्रपीड़न समाप्त करने और अभिरक्षा में के अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों के हित के संरक्षण के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में उपयुक्त उपबंध बनाना अत्यावश्यक है। सुसंगत अधिनियमितियों में प्रस्तावित संशोधनों के बारे में इस रिपोर्ट के पूर्वतर अध्यायों में पहले ही चर्चा की जा चुकी है किन्तु सुविधा के लिए प्रस्तावित संशोधनों का प्रारूप इसमें इसके पश्चात् दिया जा रहा है।

भारतीय दंड संहिता

14.2 विधि आयोग "अभिरक्षा में महिलाएं" पर 135वीं रिपोर्ट में की गई पूर्वतर सिफारिशों को पुनः दोहराता है। हम सिफारिश करते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160 के उल्लंघन के बारे में दंडित करने के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 में एक नई धारा 166क अंतःस्थापित की जाए :

"166 क. जो कोई लोक सेवक होते हुए —

(क) विधि के किसी ऐसे निदेश की जिसमें उसे किसी अपराध या अन्य विषय में अन्वेषण के प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति की उपस्थिति की अपेक्षा करने से प्रतिषिद्ध किया गया है, जानबूझकर अवज्ञा करेगा, या

(ख) विधि के किसी अन्य निदेश की जिसमें ऐसी रीति विनियमित की गई है जिसमें वह ऐसा अन्वेषण करेगा, किसी व्यक्ति के प्रतिकूल करने के लिए जानबूझकर अवज्ञा करेगा, तो वह कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

प्रस्तावित अपराध संज्ञेय, जमानतीय और किसी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय होना चाहिए।

(पैरा 6.5)

14.3 आयोग भारतीय दंड संहिता, 1860 में धारा 167क अंतःस्थापित करने की आवश्यकता पुनः दुहराता है जैसी कि उसने बलात्संग और सहबद्ध अपराध तथा विधि, प्रक्रिया और साक्ष्य के कुछ प्रश्न (पैरा 3.3) पर अपनी 84वीं रिपोर्ट में सिफारिश की थी। यह धारा इस रूप में होगी :—

"167क. जो कोई किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी होते हुए और विधि द्वारा अपेक्षित होते हुए उसको रिपोर्ट किए गए किसी संज्ञेय अपराध होने से संबंधित कोई जानकारी अभिलिखित करने से इन्कार करता है या उचित कारण के बिना अभिलिखित करने में असफल रहेगा वह दोनों में से किसी प्रकार के कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डनीय होगा।"

(पैरा 8.3)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

14.4 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41(1) का संशोधन किया जाए और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 41(1क) अंतःस्थापित की जाए, जो निम्न रूप में होगी :—

95-M/JD127MofLJ&CA—5

"41. (1क) : पुलिस अधिकारी का जो इस धारा की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करता है निम्नलिखित बातों के संबंध में युक्तियुक्त रूप से समाधान होना चाहिए और ऐसे समाधान को अभिलिखित करना चाहिए :—

(क) उस खंड में निर्दिष्ट परिवाद, जानकारी या संदेह न केवल इस बाबत है कि कोई संज्ञेय अपराध किया गया है बल्कि गिरफ्तार किया जाने वाला व्यक्ति उसमें सहअपराधिता की बात भी है;

(ख) गिरफ्तारी इस दृष्टि से आवश्यक है कि गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के आवागमन पर रोक लगाई जाए जिससे कि जनता में सुरक्षा की भावना बढ़े या गिरफ्तार किए जाने वाले को विधि की प्रक्रिया से बचने को निवारित किया जा सके या उसे उसी प्रकार का अपराध करने या साधारणतया उपद्रवी व्यवहार में लिप्त रहने से विरत किया जा सके।"

(पैरा 5.20)

14.5 यह और सिफारिश की जाती है कि भारत के विधि आयोग द्वारा 135वीं रिपोर्ट (अभिरक्षा महिलाएं) में की गई सिफारिश सं० 1 और 2 जो महिलाओं की गिरफ्तारी से संबंधित है, कार्यान्वित की जाए।

(पैरा 5.17)

14.6 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 41क निम्नलिखित रूप में अंत:स्थापित की जाए :—

"41क. उपसंजात होने की सूचना—जहां मामला धारा 41 की उपधारा (1) के खंड (क) के अन्तर्गत आता है, पुलिस अधिकारी संबंधित व्यक्तियों को गिरफ्तार करने की बजाय उसे उपसंजात होने की सूचना जारी कर सकता है, जिसमें उससे यह अपेक्षा की गई हो कि वह सूचना जारी करने वाले पुलिस अधिकारी के समक्ष या किसी ऐसे स्थान पर उपसंजात हो जो सूचना में विनिर्दिष्ट की जाए और धारा 41 की उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट अपराध के अन्वेषण में पुलिस अधिकारी के साथ सहयोग करे।

(2) जहां किसी व्यक्ति को ऐसी सूचना जारी की जाती है तो यह उस व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह सूचना के निबंधनों का पालन करे।

(3) जहां ऐसा व्यक्ति सूचना का पालन करता है तथा करता रहा है तब वह सूचना में निर्दिष्ट अपराध की बाबत तब तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा जब तक कि लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से पुलिस अधिकारी की राय नहीं है कि उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए।

(4) जहां ऐसा व्यक्ति किसी समय सूचना के निबंधनों का अनुपालन करने में असफल रहता है, वहां पुलिस अधिकारी के लिए सूचना में उल्लिखित अपराध के लिए ऐसे आदेश के अधीन रहते हुए जो सक्षम न्यायालय द्वारा इस निमित्त पारित किया गया है, उसे गिरफ्तार करना विधिपूर्ण होगा।"

(पैरा 5.21)

14.7 आयोग का यह दृष्टिकोण है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 50 के पश्चात् एक नई धारा 50क निम्नलिखित के रूप में अंत:स्थापित किए जाने की आवश्यकता है :—

50क. (1) जब भी कोई व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किया जाता है, तब पुलिस अधिकारी इस गिरफ्तारी की जानकारी निरुद्ध किए जाने के स्थान के बारे में जानकारी के साथ तत्काल निम्नलिखित व्यक्ति को भेजी जाएगी—

(क) गिरफ्तार व्यक्ति के नातेदार, मित्र या ज्ञात अन्य व्यक्ति जिसे गिरफ्तार व्यक्ति नाम निर्देशित करे;

(ख) उक्त (क) में असफल रहने पर स्थानीय विधिक सहायता समिति।

(2) ऐसी जानकारी जैसी सुविधा हो, तार या टेलीफोन द्वारा भेजी जाएगी और पुलिस अधिकारी द्वारा यह तथ्य कि ऐसी जानकारी भेज दी गई है गिरफ्तार व्यक्ति के हस्ताक्षर के अधीन अभिलिखित की जाएगी।

(3) पुलिस अधिकारी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का एक अभिरक्षा ज्ञापन और शरीर आकृति तैयार करेगा जिस पर उसके द्वारा तथा उस स्थान के जहां गिरफ्तारी की गई है दो साक्षियों के सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए जाएंगे और उसे गिरफ्तार व्यक्ति के नातेदार को, यदि वह गिरफ्तारी के समय उपस्थित है, परिदत्त कर देगा या उसकी अनुपस्थिति में ऊपर (1) में उल्लिखित व्यक्ति को गिरफ्तारी की जानकारी के साथ उसे भेज देगा।

(4) ऊपर (3) में उल्लिखित अभिरक्षा ज्ञापन में निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी :—

(i) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का नाम तथा उसके पिता अथवा पति का नाम;

(ii) गिरफ्तार व्यक्ति का पता;

(iii) अपराध की तारीख, समय और स्थान;

(iv) अपराध जिसके लिए गिरफ्तारी की गई है;

(v) गिरफ्तार व्यक्ति से गिरफ्तारी के समय बरामद तथा प्रभार में ली गई संपत्ति, यदि कोई हो, और

(vi) कोई शारीरिक क्षति जो गिरफ्तारी के समय स्पष्ट हो।

(5) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से पूछताछ के समय उसके विधि व्यवसायी को उपस्थित रहने की अनुमति दी जाएगी।

(6) पुलिस अधिकारी जैसे ही गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को पुलिस थाने लाया जाता है उसे इस धारा के विषय-वस्तु की जानकारी देगा और पुलिस डायरी में निम्नलिखित तथ्यों की प्रविष्टियां करेगा :—

(क) वह व्यक्ति जिसे गिरफ्तारी की जानकारी दी गई है;

(ख) यह तथ्य कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस धारा के विषय-वस्तु की जानकारी दे दी गई है; और

(ग) यह तथ्य कि अभिरक्षा ज्ञापन तैयार किया गया है जैसा कि इस धारा में अपेक्षित है।

(पैरा 5.16)

14.8 आयोग की राय है कि विधि आयोग की 84वीं रिपोर्ट के अध्याय 4 में अंतर्विष्ट सिफारिशों के अतिरिक्त, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 में निम्न प्रकार संशोधन किया जाए :—

"54. गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सा व्यवसायी द्वारा परीक्षा— जब कोई व्यक्ति जो किसी आरोप पर या अन्यथा गिरफ्तार किया जाता है, अभिरक्षा में अपने अवरोध की अवधि के दौरान किसी समय अभिकथन करता है कि उसके शरीर की परीक्षा से ऐसा साक्ष्य मिलेगा जो उसके द्वारा अपराध किए जाने को मिथ्या सिद्ध करेगा या मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो मजिस्ट्रेट इस प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को चिकित्सीय परीक्षा के अधिकार के बारे में उसे सूचित करेगा जो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जिसके अंतर्गत लोक सेवक है अभिरक्षा के दौरान उसके शरीर के विरुद्ध किए गए अपराध को सिद्ध करेगा और अपराधी को ऐसे अधिकार की संसूचना के तथ्य के बारे में लेखबद्ध करेगा जिसमें किसी लोक सेवक के, जिसने उसे गिरफ्तार किया है, अवपीड़न या भय के बिना या ऐसे लोक सेवक की उपस्थिति के बिना, अपने अधिकार का प्रयोग किया है तब मजिस्ट्रेट यदि गिरफ्तार व्यक्ति ऐसा अभिकथन करता है जब तक कि मजिस्ट्रेट यह नहीं समझता है कि अभिकथन खिजाऊ या विलंब के प्रयोजन के लिए अथवा न्याय के निष्कर्ष को विफल करने के लिए किया गया है, ऐसे व्यक्ति के शरीर की किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा

व्यवसायी द्वारा इसके अधीन विहित रीति में परीक्षा कराएगा और निम्नलिखित विशिष्टियां अभिलिखित करेगा :

(क) अभियुक्त पीड़ित व्यक्ति की परीक्षा किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा या उपलब्ध किसी सरकारी चिकित्सालय द्वारा की जाए जैसा मजिस्ट्रेट निदेश दे ।

(ख) रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी जिसको ऐसा व्यक्ति अग्रेषित किया जाता है उसकी बिना विलंब के परीक्षा करेगा और एक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसमें विनिर्दिष्ट रूप से निम्नलिखित ब्यौरे अभिलिखित करेगा :

(i) पीड़ित और उस व्यक्ति का, जिसके द्वारा यह लाया गया था, नाम और पता;

(ii) पीड़ित व्यक्ति की आयु ;

(iii) उसके शरीर पर बाह्य/भीतरी क्षति, यदि कोई हो;

(iv) पीड़ित व्यक्ति की साधारण मानसिक दशा;

(v) अन्य तात्विक विशिष्टियां और अन्य सुसंगत ब्यौरे,

(ग) उक्त परीक्षा की रिपोर्ट में ऐसे निष्कर्षों के प्राप्त करने के लिए संक्षिप्त कारण कथित किए जाएंगे ।

(घ) रिपोर्ट में परीक्षा प्रारंभ करने और पूर्ण करने का ठीक समय नोट किया जाएगा और बिना विलंब के रिपोर्ट को मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाएगा जो उसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार कार्रवाई करेगा ।

(पैरा 7.8)

14.9 विभिन्न सुरक्षोपायों के और अधिक तथा प्रभावी अनुपालन किए जाने की दृष्टि से आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 57क निम्नलिखित रूप में अंत:स्थापित की जाए :—

57क. कुछ तथ्यों को सत्यापित करने का मजिस्ट्रेट का कर्तव्य—जब बिना वारंट के गिरफ्तार किया गया कोई व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तब मजिस्ट्रेट गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से पूछताछ करके अपना समाधान करेगा कि धारा———— (गिरफ्तारी, गिरफ्तारी पर अधिकार आदि के संबंध में सुरक्षोपायों से संबंधित धाराएं प्रविष्ट की जाएं) के उपबंधों का अनुपालन किया गया है और गिरफ्तारी की तारीख तथा समय के बारे में भी पूछ कर अभिलिखित करेगा ।

(पैरा 5.22)

14.10 यदि पुलिस अधिकारी प्रथम इत्तला रिपोर्ट अभिलिखित करने से इंकार करता है तो व्यक्ति को (i) अभिरक्षा के दौरान क्षति या यंत्रणा और बध से भिन्न अन्य सभी अपराधों के मामले में मुख्य न्याय मजिस्ट्रेट के समक्ष और (ii) अभिरक्षा में मृत्यु के मामलों में सेशन न्यायाधीश के समक्ष अर्जी फाइल करने का अधिकार होना चाहिए । तद्नुसार आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में एक नई धारा 154क निम्नलिखित रूप में अंत:स्थापित की जाए :

"154क. धारा 154 में किसी बात के होते हुए भी (1) अभिरक्षा में अपराध से संबंधित मामलों में उस धारा की उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूचना अभिलिखित करने के लिए पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की ओर से इन्कार किए जाने से व्यथित कोई व्यक्ति (जिसके अंतर्गत विधिक सहायता केन्द्र या एन० ओ० जी० या कोई मित्र अथवा नातेदार है) ऐसी सूचना का संक्षेप देते हुए,

(क) अभिरक्षा में अपराध के ऐसे मामले में पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु अंतर्वलित करने से भिन्न है तो मुख्य न्यायपालिक मजिस्ट्रेट के समक्ष; या

(ख) अभिरक्षा में अपराध के ऐसे मामले में जिसमें पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु अंतर्वलित है, तो सैशन, न्यायधीश के समक्ष अर्जी फाइल कर सकेगा ।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सैशन न्यायाधीश यदि प्रारंभिक जांच करने पर उसका यह समाधान हो जाता है कि प्रथम दृष्ट्या मामला बनता है तो शिकायत पर स्वयं जांच कर सकेगा या, यथास्थिति, किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या अपर सैशन न्यायाधीश को जांच करने के निदेश दे सकेगा और तदुपरांत न्यायालय के अनुसूचिवीय अधिकारियों को निदेश दे सकेगा कि उस अपराध की बाबत जो किया गया प्रतीत हो सक्षम न्यायालय में परिवाद फाइल किया जाए ।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में किसी बात के होते हुए भी उपधारा (2) के अधीन परिवाद किए जाने पर सक्षम न्यायालय अपराध का संज्ञान करेगा और उसका विचारण करेगा ।

(4) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सैशन न्यायाधीश किसी लोक सेवक या प्राधिकारी की जिसे वह उपधारा (2) के अधीन जांच करने में उपयुक्त समझे, सहायता ले सकेगा ।

(पैरा 8.5)

14.11 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 160(1) में अंतर्विष्ट विद्यमान परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित रूप में दूसरा परन्तुक जोड़ा जाए :—

"परन्तु किसी व्यक्ति से अपने निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर उपस्थित होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी जब तक अन्वेषण अधिकारी द्वारा लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से ऐसा करना आवश्यक न हो, और ऐसा प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार लिखित आदेश द्वारा समन किया जाएगा ।"

(पैरा 6.3)

14.12 आयोग सिफारिश करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 197(1) के नीचे निम्नलिखित रूप में एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाना चाहिए :—

"स्पष्टीकरण—संदेह दूर करने की दृष्टि से इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि किसी न्यायाधीश या लोक सेवक द्वारा किए गए किसी अपराध को जो उसकी अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की बाबत किए गए मानव शरीर के विरुद्ध अपराध है अथवा प्राधिकार का दुरुपयोग गठित करने वाले किसी अन्य अपराध को इस धारा के उपबंध लागू नहीं होंगे ।"

(पैरा 10.5)

14.13 अभिरक्षा में रहते हुए अपराध के लिए पृथक् रूप से प्रतिकर का उपबंध करने की दृष्टि से आयोग दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में निम्नलिखित रूप में एक नई धारा 357क अंत:स्थापित करने की सिफारिश करता है :—

धारा 357क. अभिरक्षा में रहते हुए अपराध में प्रतिकर]

(1) धारा 357 के उपबंधों के होते हुए भी जहां न्यायालय किसी लोक सेवक को किसी ऐसे अपराध का दोषसिद्ध करता है, जिसका परिणाम मृत्यु या शारीरिक क्षति है जो ऐसे लोक सेवक के उसके अभिरक्षा में के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी कार्य से गठित हुआ है वहां इस धारा के उपबंध लागू होंगे ।

(2) न्यायालय किसी मामले में जिसको यह धारा लागू होती है, निर्णय पारित करते समय यह आदेश देगा कि वह सरकार जिसके कार्यकलाप के संबंध में ऐसा लोक सेवक उस समय नियोजित था जब ऐसा कार्य किया गया, ऐसे लोक सेवक के साथ ऐसे प्रतिकर देने के लिए संयुक्त: और पृथक्त: दायी होगी जो आदेशों में विनिर्दिष्ट किया जाए ।

(3) इस धारा के अधीन प्रतिकर के संदाय के लिए कोई आदेश अपील न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा या सैशन न्यायालय द्वारा भी जब वह पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो, किया जा सकेगा ।

(4) उसी विषय के संबंध में किसी पश्चात्वर्ती वाद में प्रतिकर का अधिनिर्णय करते समय सिविल न्यायालय इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में संदत्त या वसूल की गई किसी रकम को हिसाब में लेगा ।

(5) इस धारा के अधीन अधिनिर्णीत रकम निम्नलिखित से कम नहीं होगी :—

(क) ऐसी शारीरिक क्षति की दशा में जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु नहीं हुई है, पच्चीस हजार रुपए,

(ख) मृत्यु की दशा में एक लाख रुपए ।

(6) इस धारा के अधीन प्रतिकर की रकम तय करते समय न्यायालय धारा 34 (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा जिनके अंतर्गत निम्नलिखित है किन्तु आवश्यकता उन तक सीमित नहीं होगी, भी है :—

(क) पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगी गई क्षति का प्रकार और गंभीरता;

(ख) पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगी गई मानसिक मनोव्यथा;

(ग) पीड़ित व्यक्ति के उपचार और पुनर्वास पर उपगत या किए जाने के लिए संभाव्य व्यय,

(घ) पीड़ित व्यक्ति की वास्तविक और आशयित अर्जन क्षमता और प्रतिकर के लिए हकदार व्यक्तियों और कुटुम्ब के अन्य सदस्यों पर इस हानि का प्रभाव;

(ङ) वह सीमा जिस तक पीड़ित व्यक्ति ने स्वयं क्षति में योगदान दिया है;

(च) मामले के अभियोजन में उपगत व्यय ।

(7) पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की दशा में न्यायालय जीवन की प्राक्कलित अवधि से गुणा करके पीड़ित व्यक्ति की प्राक्कलित वार्षिक आय को हिसाब में लेगी ।

(8) कार्यवाही का अंतिम अवधारण लंबित रहने तक न्यायालय अंतरिम राहत के रूप में ऐसा प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकता है जैसा कि वह मामले के किसी प्रक्रम पर दोषसिद्धि का निर्णय प्राप्त होने से भी पूर्व मामले की परिस्थितियों में उचित समझे ।

(9) सरकार इस धारा के अधीन प्रतिकर के रूप में उसके द्वारा संदत्त किसी रकम को पूर्णतः या भागतः जो वह उचित समझे, दोषी लोक सेवक से वसूली कर सकती है ।

(पैरा 12.7)

भारतीय साक्ष्य अधिनियम

14.14 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट अपवर्जनकारी उपबंध जो इस समय पुलिस अधिकारियों तक सीमित हैं, उन्हें सभी लोक अधिकारियों तक विस्तृत कर दिया जाना चाहिए और धारा का इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए ।

"25. **लोक अधिकारियों से की गई संस्वीकृति का साबित न किया जाना**—किसी लोक सेवक से की गई कोई भी संस्वीकृति किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध संगठित न की जाएगी ।"

इस धारा में लोक सेवक से अभिप्रेत है,—

(क) ऐसा लोक सेवक जो पुलिस आफिसर नहीं है, जिसे संस्वीकृति करने वाले व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है ।

(ख) प्रत्येक पुलिस आफिसर चाहे उसे ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति है अथवा नहीं ।

26. **लोक सेवक की अभिरक्षा में होते हुए अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति का उसके विरुद्ध साबित न किया जाना**—कोई भी संस्वीकृति जो किसी व्यक्ति ने उस समय की थी जब वह लोक सेवक की अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित न की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो ।

स्पष्टीकरण—इस धारा में "मजिस्ट्रेट" के अंतर्गत फोर्ट सेंट जार्ज की प्रेसिडेंसी में या अन्यथा मजिस्ट्रेट के कृत्य का निर्वहन करने वाला ग्रामणी नहीं आता है जब कि वह ग्रामणी कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 10) के अधीन मजिस्ट्रेट की अधिकारिता का प्रयोग करने वाला मजिस्ट्रेट न हो ।

(पैरा 11.7)

14.15 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाए :—

"27. **अभियुक्त की पहल पर तथ्य का उद्घाटन**—जब किसी सुसंगत तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि वह किसी अपराध के अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप पता चला है चाहे ऐसा व्यक्ति पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो या न हो तब तथ्य जिसका इस प्रकार पता चला है, न कि जानकारी, साबित की जा सकती है चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आता है या नहीं ।"

(पैरा 11.6)

14.16 आयोग सिफारिश करता है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में एक नई धारा निम्न रूप में अंतःस्थापित की जाए :—

"114ख. (1) किसी पुलिस आफिसर के अभियोजन में ऐसे कार्य द्वारा गठित किसी अपराध के लिए जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसके द्वारा किसी व्यक्ति को मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित हुई है, यदि ऐसा साक्ष्य है कि मृत्यु या क्षति उस अवधि के दौरान हुई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तब न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि मृत्यु या क्षति उस पुलिस अधिकारी द्वारा कारित की गई है जिसकी अभिरक्षा में वह व्यक्ति उस अवधि के दौरान था ।

(2) न्यायालय यह विनिश्चय करने में कि वह उपधारा (1) के अधीन कोई उपधारणा करे अथवा नहीं सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखे, विशेष रूप से वह (क) अभिरक्षा की अवधि (ख) किस प्रकार क्षति हुई थी, जो साक्ष्य में ग्राह्य कथन है, (ग) किसी चिकित्सा व्यवसायी का साक्ष्य जिसने पीड़ित व्यक्ति की परीक्षा की हो और (घ) किसी मजिस्ट्रेट का साक्ष्य जिसने पीड़ित व्यक्ति का साक्ष्य अभिलिखित किया हो या अभिलिखित करने का प्रयास किया हो ।"

(पैरा 11.3)

14.17 हम सिफारिश करते हैं कि पुलिस संगठन की पुनः संरचना की जाए जिसमें अन्वेषण के बारे में कार्यवाही करने वाले खंड को विधि और व्यवस्था के बारे में कार्यवाही करने वाले खंड से पृथक् रखा जाए । इसके अतिरिक्त पुलिस को अन्वेषण की आधुनिक तकनीक में उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ।

(पैरा 13.6)

न्यायमूर्ति के० एन० सिंह

अध्यक्ष

प्रो० डी० एन० सदाशिव	चि० प्रभाकर राव,
सदस्य	**सदस्य सचिव**
पी० एम० बख्शी	एस मार्कस
सदस्य (अंशकालिक)	**सदस्य (अंशकालिक)**

95-M/JD\127MofLJ&CA—7

परिशिष्ट–1

अभिरक्षान्तर्गत अपराध

(कार्यपत्र)

पुलिस और किसी अपराध के अन्वेषण के संबंध में पूछताछ के लिए गिरफ्तार करने की शक्ति रखने वाले अन्य शासकीय अभिकरणों को अभिरक्षा में संदिग्ध व्यक्ति पर की गई ज्यादती और उनको यातना के बारे में परिवाद पहले भी मिलते रहे हैं। कुछ समय से ऐसी परिवादों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है क्योंकि पुलिस अभिरक्षा में यातना, हमला, क्षति और मृत्यु की घटनाओं में अभूतपूर्व आनुपातिक वृद्धि हुई है। संविधान का अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी का उपबंध करता है यद्यपि इसमें अभिरक्षा में यातना के विरुद्ध कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है, फिर भी किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए यह काफी पर्याप्त है क्योंकि विधि द्वारा स्थापित कोई भी विधि या प्रक्रिया, अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को यातना या उस पर हमला अनुज्ञात नहीं करती है। कानूनी विधियां जिनमें भारतीय दंड संहिता और दंड प्रक्रिया संहिता भी है, हमला और क्षति के विरुद्ध किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करती हैं। तथापि, किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता और प्राण के रक्षोपायकारी संवैधानिक और कानूनी उपबंधों के बावजूद, पुलिस अभिरक्षा में यातना और मृत्यु को बढ़ती हुई घटनाएं चिंताजनक कारक हो गई है। प्रायः हमें प्रतिदिन समाचार पत्रों में पुलिस और अन्य शासकीय अभिकरणों को अभिरक्षा में अमानवीय यातना हनन और मृत्यु की हृदयविदारक घटनाएं पढ़ने को मिलती है। हालांकि देश में अभिरक्षान्तर्गत अपराधों पर कोई विश्वसनीय सांख्यिकी उपलब्ध नहीं है, फिर भी ऐमनेस्टी इंटरनेशनल ने अपनी 1993 की रिपोर्ट में उपदर्शित किया है कि भारत में 1985–1992 के दौरान अभिरक्षा में 415 लोगों की मृत्यु होने की रिपोर्ट मिली थी। हाल की एक प्रेस रिपोर्ट से भी पता चलता है कि जनवरी-मार्च, 1993 के दौरान अभिरक्षा में 45 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी। इन आंकड़ों की शुद्धता के बारे में चर्चा किए बिना भी, यह स्पष्ट है कि अभिरक्षा में यातना और मृत्यु की घटनाएं चेतावनी जनक अनुपात में बढ़ गई है जो विधि सम्मत शासन और दांडिक न्याय के प्रशासन की विश्वसनीयता को प्रतिकूलतः प्रभावित कर रही है। इससे सभ्य समाज में ऐसे व्यक्तियों की अन्तरात्मा को कुरेदा है और न्यायालयों, मानव अधिकार क्रियावादियों राज्य संचार माध्यमों द्वारा आलोचनाओं को बढ़ावा दिया है। समुदाय यह महसूस करता है कि पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु को, बड़ी गंभीरता से लिया जाना चाहिए अन्यथा यह पुलिस राज के उन्नयन के लिए एक लम्बा डग होगा। इसका कठोरता पूर्वक दमन करना चाहिए और दंड ऐसा होना चाहिए जो दूसरों को ऐसे आचरण में लिप्त होने से निवारित करें।

अभिरक्षान्तर्गत हिंसा और पुलिस शक्ति का दुरुपयोग, अंतरराष्ट्रीय समुदाय की चिंता का विषय रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 9 दिसंबर, 1975 को यातना और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अन्य अपराधों से व्यक्तियों के संरक्षण के लिए घोषणा अंगीकार की थी। घोषणा में सदस्य राज्यों को, युद्ध की स्थिति या युद्ध की आशंका या आंतरिक राजनैतिक स्थिरता जैसी आपवादिक परिस्थितियों में भी अनुज्ञा करने या सहन करने से प्रतिषिद्ध किया गया था। अनुच्छेद 5 में यातना के विरुद्ध, विधि प्रवर्तन अधिकारियों का सघन प्रशिक्षण अपेक्षित है। अनुच्छेद 7 में पूछताछ, पद्धतियों और प्रथाओं, साथ ही अभिरक्षान्तर्गत इंतजामों के पुनर्विलोकन की प्रणाली अपेक्षित है। अनुच्छेद 7 राज्यों के लिए यह सुनिश्चित करना आबद्धकार बनाता है कि यातना के कृत्य, राष्ट्रीय दांडिक विधि के अधीन अपराध बनाए जाएं। घोषणा यह भी उपबंध करती है कि पीड़ित व्यक्ति को परिवाण और प्रतिकर प्रदान किया जाएगा। घोषणा, जो आबद्धकर अंतरराष्ट्रीय विधि का एक भाग है, हमारे देश में अभी तक कार्यान्वित नहीं की गई है। महासभा द्वारा 17 दिसंबर, 1979 को अपनाई गई विधि प्रवर्तन अधिकारियों के लिए एक आचरण संहिता भी विद्यमान है, जिसके अधीन कर्मचारियों द्वारा "नैतिक मानदंडों के प्रभावी अनुरक्षण" के लिए अधिष्ठायी मानक विहित हैं। अनुच्छेद 5 विधि प्रवर्तन अधिकारियों को यातना का कोई कृत्य अधिरोपित करने, उकसाने या सहन करने से प्रतिषिद्ध करती है। इसके बाद 10 दिसंबर, 1984 को एक अभिसमय द्वारा एक और घोषणा अपनाई गई जिसमें 33 अनुच्छेदों के अधिक व्यापक क्षेत्र के लिए उपबंध है। महासभा ने 29 नवंबर, 1985 को "अपराध से पीड़ित व्यक्तियों के लिए न्याय के आधारिक सिद्धांत और शक्ति के दुरुपयोग पर कारकस घोषणा" नाम से ज्ञात एक और

घोषणा अंगीकार की थी। यह घोषणा राज्य के लिए शक्ति के दांडिक दुरुपयोग के प्रतिषेध के लिए और यातना पद्धतियों के आश्रय के प्रतिषेध के लिए भी विधियों को परिभाषित करना आबद्धकर बनाती है। भारत, इन घोषणाओं और अभिसमयों का एक पक्षकार होने के कारण शक्ति के दुरुपयोग के निवारण के लिए, जिसके अंतर्गत यातना और अभिरक्षान्तर्गत हिंसा भी है, और अनुच्छेद 51 के अधीन संवैधानिक आदेश के अनुसार पीड़ित व्यक्तियों और उनके कुटुंब के सदस्यों के प्रति स्थापन और प्रतिकार का उपबंध करने के लिए, प्रभावी कदम की बाध्यता के अधीन है।

विरुपज्ञादरूप से, अभिरक्षा में यातना और मृत्यु के शिकार ऐसे निर्धन व्यक्ति हैं जिनके पास अपने प्राण और स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए पर्याप्त संसाधन या बिल नहीं होता है। अनेक मामलों में किसी निर्धन कुटुंब का एक मात्र जीविकाजन करने वाला व्यक्ति, अपने पीछे संपूर्ण कुटुंब को निर्धनता और मुफलिसी की स्थिति में छोड़कर अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु का शिकार बन जाता है। इसीलिए, विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से विचारार्थ इस विषय को लेना आवश्यक समझा ताकि ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति के लिए दंड की व्यवस्था करने, और पीड़ित व्यक्तियों तथा उनके आश्रितों को आर्थिक राहत की मंजूरी के लिए भी, विधियों का संशोधन करके समुचित कदम उठाए जा सकें।

इन अभिरक्षान्तर्गत यातना और मृत्यु की समस्या के संबंध में उठने वाले विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करें, इसके पूर्व यह आवश्यक है कि हम संविधान में प्राणों के अधिकार के संरक्षण के लिए संवैधानिक उपबंध और अभिरक्षा में यातना और हमले के विरुद्ध गारंटी पर एक बार दृष्टिपात कर लें। संविधान का अनुच्छेद 21 यह उपबंध करता है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण और दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जाएगा। "प्राण अथवा दैहिक स्वतंत्रता" पद के अंतर्गत मानव गरिमा के साथ जीवित रहने का अधिकार आता है जिसमें राज्य द्वारा यातना और हमला के विरुद्ध गारंटी भी शामिल है। अनुच्छेद 22 कुछ अवस्थाओं में बंदीकरण और निरोध से संरक्षण की गारंटी देता है। यह घोषित करता है कि कोई व्यक्ति जो गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराए गए बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं किया जाएगा और न अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित रखा जाएगा। अनुच्छेद का खंड (2) निदेश देता है कि वह व्यक्ति जो गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध किया गया है, गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अवधि के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन किसी अपराध में अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं उसके विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इन संवैधानिक उपबंधों का उद्देश्य, किसी व्यक्ति के किसी अपराध के लिए जाने के संबंध में उसकी गिरफ्तारी के पश्चात् भी प्राण और उसकी स्वतंत्रता की रक्षा करना है। यद्यपि अनुच्छेद 21 और 22 में, किसी गिरफ्तार व्यक्ति पर, जब वह अभिरक्षा में है, यातना, हमला या क्षति के विरुद्ध कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है और फिर भी उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 21 राज्य द्वारा, किसी व्यक्ति को, जब वह अभिरक्षा में है, यातना और हमले के विरुद्ध संरक्षण की गारंटी देता है।

संवैधानिक गारंटी से संगत, किसी अपराध के लिए जाने के संबंध में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के संरक्षण के लिए कानूनी उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता में अंतर्विष्ट हैं। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 5 में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी और उन रक्षोपायों के लिए उपबंध है जो गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के हित के संरक्षण के लिए पुलिस द्वारा लिए जाने के लिए अपेक्षित है। धारा 41 किसी पुलिस अधिकारी को, मजिस्ट्रेट के किसी आदेश या वारंट के बिना, उसमें विनिर्दिष्ट परिस्थितियों के अधीन किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति प्रदान करता है। यह उपबंध, किसी पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति के स्वातंत्र्य और उसकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की अतिव्यापक शक्ति प्रदान करता है। धारा 46 गिरफ्तार करने की पद्धति और रीति का उपबंध करती है। उस धारा के अधीन, कोई औपचारिकता आवश्यक नहीं है क्योंकि यह कर्म अथवा वचन द्वारा की जा सकती है। किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय पुलिस को उससे अधिक जबरोध का उपयोग करने की अनुज्ञा नहीं है जितना उस व्यक्ति के भाग निकलने के निवारण के लिए आवश्यक है।[2] धारा 50, वारंट के बिना किसी व्यक्ति

1. देखिए सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन ए आई आर 1978 एस सी 1675, बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य ए आई आर 1980 एस सी 898 सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1980 एस सी 1579.

2. धारा 49.

को गिरफ्तार करने वाले प्रत्येक पुलिस अधिकारी को उसे उस अपराध की पूर्ण विशिष्टयां जिसके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है और ऐसी गिरफ्तारी के लिए कारण संसूचित करने के लिए आदिष्ट करती है। पुलिस अधिकारी से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को सूचित करे कि वह जमानत पर निर्मुक्त किए जाने का हकदार है और किसी अजमानतीय अपराध के लिए उसकी गिरफ्तारी की दशा में वह अपनी ओर से प्रतिभूओं के लिए व्यवस्था कर सकता है। पुलिस अधिकारी के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की चिकित्सीय परीक्षा कराना अनुज्ञेय है। इसी प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अपनी चिकित्सीय परीक्षा के लिए जिद करने का अधिकार है। (धारा 53 और 54) धारा 56 में यह अपेक्षा करने वाला एक आज्ञापक उपबंध अंतर्विष्ट है कि वारंट के बिना गिरफ्तारी करने वाला पुलिस अधिकारी अनावश्यक विलम्ब के बिना उस व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है, मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाएगा। धारा 57 में यह उपबंध है कि वारंट के बिना गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को कोई पुलिस अधिकारी उससे अधिक अवधि के लिए जो उस मामले की सब परिस्थितियों में उचित है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर चौबीस घंटे से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखेगा। तथापि, यदि पुलिस पूछताछ या अन्वेषण के प्रयोजन के लिए अधिक अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निरुद्ध रखना चाहती है तो उन्हें मजिस्ट्रेट से आदेश अभिप्राप्त करना होगा और धारा 167 के अधीन यथाविहित प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। वारंट के बिना किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी की सूचना, गिरफ्तार करने वाले थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को, या उपखंड मजिस्ट्रेट को दी जानी है, ये उपबंध गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को प्रक्रियात्मक रक्षोपाय प्रदान करते हैं। जब कभी किसी व्यक्ति की पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हो जाती है तब धारा 176 मजिस्ट्रेट से मृत्यु के कारणों की जांच करने की अपेक्षा करती है। मजिस्ट्रेट साक्ष्य अभिलिखित करने और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए मृत शरीर की जांच करवाने के लिए सशक्त है। इस धारा का उद्देश्य, संदिग्ध मृत्यु की जांच करना है ऐसी जांच और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट, मौलिक साक्ष्य का गठन नहीं करती जैसा कि न्यायालयों द्वारा अभिनिर्धारित[3] किया गया है।

भारतीय दंड संहिता में दांडिक उपबंध भी अंतर्विष्ट है जो जीवन के अधिकार का अतिलंघन निवारित करने के लिए हैं। धारा 220 ऐसे किसी अधिकारी या प्राधिकारी के लिए दंड का उपबंध करती है जो किसी व्यक्ति को भ्रष्ट या विद्वेषपूर्ण आशय से परिरोध में रखता है। धारा 330 और 331 उनके लिए दंड का उपबंध करती है जो किसी अपराध के किए जाने की बाबत संस्वीकृति या जानकारी उद्दापित करने के लिए किसी व्यक्ति को क्षति या घोर उपहति पहुंचाते हैं। धारा 330 के दृष्टांत (क) और (ख) पुलिस आफिसर को, किसी अपराध के किए जाने के लिए संस्वीकृति हेतु उत्प्रेरित करने या यह बतलाने को कि अमुक चुराई हुई संपत्ति कहां रखी है उत्प्रेरित करने के लिए किसी व्यक्ति को यातना देने का दोषी बनाता है। इसलिए धारा 330, यातना को भारतीय दंड संहिता के अधीन सीधे दंडनीय बनाती है। ये कानूनी उपबंध गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के हित की रक्षा करने के लिए हैं, किन्तु ये अपर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त, पुलिस इन उपबंधों का अनुसरण नहीं करती है, इसके बजाय वे अभिलेखों में हलसाधन द्वारा प्रक्रियात्मक विधि की कठोरता से बचते हैं। जैसा कि पहले देखा गया है बिना वारंट के गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को अनावश्यक विलम्ब के बिना मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए और उसे उस अपराध की जिसके लिए वह गिरफ्तार किया गया हो या उसकी गिरफ्तारी के आधार की की जानकारी भी दी जानी चाहिए और यदि उसे असंज्ञेय अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया है तो जमानत पर निर्मुक्त कर दिया जाना चाहिए। पुलिस से यह और अपेक्षा है कि वह उसकी गिरफ्तारी की प्रविष्टि, पुलिस अधिनियम और पुलिस मैनुअल के अधीन विभिन्न दस्तावेजों में करे तथा गिरफ्तारी की तारीख और समय के बारे में जिला मजिस्ट्रेट और उपखंड मजिस्ट्रेट को सूचना दे। विधि की इन कठोरताओं से बचने के लिए पुलिस, अभिलेखों में कोई प्रविष्टि किए बिना अनौपचारिक गिरफ्तारी करती है, ऐसी उदाहरणों की कमी नहीं है जहां पुलिस ने किसी अपराध के अन्वेषण के संबंध में बिना वारंट किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है तथा आगे अन्वेषण के प्रयोजन के लिए या आयुधों अथवा माल की वसूली के लिए और कानूनी विधि के उल्लंघन में संस्वीकृति निकालने के लिए भी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यातना के अध्यधीन किया है। बंदी के शरीर पर कारित यातना और क्षति का परिणाम कभी कभी उसकी मृत्यु होता है। साधारणतः अभिलेखों में अभिरक्षा में हुई मृत्यु नहीं दिखलाई जाती है और पुलिस द्वारा लाश के व्ययन

(1955) एस सी आर 1090.

या यह मामला बनाने का प्रत्येक प्रयास किया जाता है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की मृत्यु उसको अभिरक्षा से मुक्त किए जाने के पश्चात् हुई थी। ऐसी यातना या मृत्यु के विरुद्ध किसी परिवाद पर पुलिस अधिकारी द्वारा भाईचारे के कारण कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। शिकार व्यक्ति या उसके संबंधियों की प्रेरणा पर कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट स्वीकार नहीं की जाती और उच्च पुलिस अधिकारी भी ऐसी परिवादों की ओर से आंखें फेर लेने को अधिमान देते हैं। किन्तु यदि शिकार व्यक्ति या उसके संबंधियों द्वारा औपचारिक अभियोजन आरंभ भी कर दिया जाता है तो यातना या उपहति कारित करने के जिसका परिणाम मृत्यु है, आरोप को सिद्ध करने के लिए कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है क्योंकि वह पुलिस हवालात, जहां साधारणतः गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर यातना या क्षति कारित की जाती है, लोक दृष्टि से दूर होते हैं जहां पर एकमात्र साक्षी या तो पुलिस कर्मी हैं या सह बंदी, जो अभियोजन साक्षियों के रूप में हाजिर होने से, प्रथमतः पुलिस भाईचारे के कारण, और द्वितीयतः पुलिस के उच्च वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा प्रतिकार के भय के कारण अत्यधिक निरपेक्ष होते हैं।

जैसी कि विधि इस समय है कि यदि पुलिस अभिरक्षा में यातना मृत्यु या क्षति के विरुद्ध कोई परिवाद किया जाता है तो न्यायालय में आरोप सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और परिवादी या अभियोजन सभी युक्तियुक्त संदेह से परे आरोप सिद्ध करने के लिए साक्ष्य पेश करने में असमर्थ है। ऐसे मामलों में, उत्पीड़न पद्धतियों का आशय लेने के लिए उत्तरदायी पुलिस कर्मचारियों के विरुद्ध साक्ष्य प्राप्त कर पाना कठिन और सापेक्षतः असंभव है क्योंकि वे पुलिस थाना अभिलेख के भारसाधक हैं जिसे हलसाधित करना उनके लिए कठिन नहीं होता है। परिणामस्वरूप, अपचारी अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन का परिणाम दोषमुक्ति होता है। उच्चतम न्यायालय ने भी मामलों की श्रृंखला में इस कठिनाई पर विचार किया था और यह संप्रेक्षण किया था कि इस स्थिति में, साक्ष्य विधि में सबूत के भार से संबंधित विधि का संशोधन अपेक्षित था।

सबूत के भार से संबंधित विधि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 101 से 114 तक में अंतर्विष्ट है। इन धाराओं से यथा व्यय कलनीय साधारण सिद्धांत यह है कि अभियोजन का किसी अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध आरोपित अपराध के सभी आवश्यक तत्वों का, सभी युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना एक आज्ञापक कर्तव्य है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा रामसागर यादव के मामले में[4] दिए गए सुझावों पर, विधि आयोग ने अपनी 113वीं रिपोर्ट में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में धारा 114ख के रूप में एक नई धारा के अंतःस्थापन की सिफारिश की थी। विधि आयोग की सिफारिश यह थी कि किसी व्यक्ति को कारित शारीरिक क्षति के अभिकथित अपराध के लिए किसी पुलिस अधिकारी के अभियोजन में यदि यह साक्ष्य था कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि क्षति उस अवधि के दौरान उस व्यक्ति की अभिरक्षा रखने वाले व्यक्ति द्वारा कारित की गई थी। आयोग ने यह और सिफारिश की कि न्यायालय को, उपधारणा के प्रश्न पर विचार करते समय सभी सुसंगत परिस्थितियों को भी, जिनके अंतर्गत अभिरक्षा की अवधि, शिकार व्यक्ति द्वारा किया गया कथन चिकित्सीय साक्ष्य और वह साक्ष्य भी है जो मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित की गई हो, ध्यान में रखना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने पुनः हाल के मामलों[5] में, इस प्रश्न पर विचार किया और यह संप्रेषण किया कि मामले की स्वीकृत तथ्य यह उपदर्शित करते हैं कि शिकार व्यक्ति को अभिरक्षा में लिया गया था और बाद में, अगले दिन यदि वह पुलिस चौकी के पास मृत पाया गया तो यह स्पष्टीकरण देने का भार स्पष्टतः राज्य पर था कि शिकार व्यक्ति को वे क्षतियां किस प्रकार आई जिनसे उसकी मृत्यु कारित हुई। न्यायालय ने पुनः ऐसे मामलों में सबूत के भार के नियम के परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया। यह खेद का विषय है कि विधि आयोग की सिफारिशों और अनेक मामलों में उच्चतम न्यायालय के संप्रेषण संप्रेक्षओं के बावजूद, साक्ष्य की विधि में अपेक्षित संशोधन नहीं किए गए। पुलिस अत्याचारों और अभिरक्षान्तर्गत किसी यातना और मृत्यु में तीव्र वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का, जैसा पहले सुझाया गया है, संशोधन अत्यधिक महत्व का है। इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि संसद ने अभिरक्षा के दौरान लैंगिक शोषण की बढ़ती हुई घटनाओं को दृष्टि में रखकर अभिरक्षा में बलात्संग और दहेज मृत्यु के मामलों में उपधारणा बढ़ाने के लिए साक्ष्य अधिनियम का

4. ए आई आर 1985 एस सी 446.

5. 1993 (2) एस सी सी 346.

संशोधन करके भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 114क और 114ख अंतःस्थापित की जिनके द्वारा बलात्संग और दहेज मृत्यु के लिए अभियोजन में अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा करने के लिए न्यायालय को सशक्त किया गया। यह विधायी प्रयास, बलात्संग और दहेज के मामलों में साक्ष्य के अभाव के तकनीकी अभिदाक् को पूरा करने के लिए किया गया था। अतः ऐसा कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि वही सिद्धांत, अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के मामले में क्यों न विस्तारित किया जाए।

पूछताछ के दौरान अभिरक्षा में यातना और पिटाई की संभावना को कम करने के लिए विधियों में और उपबंध किए जाने की आवश्यकता है। पुलिस, निश्चयवादतः, किसी अपराधी को गिरफ्तार करने और अपराध के अन्वेषण के दौरान उससे पूछताछ करने के विधिक कर्तव्य के अधीन, विधि, अभिरक्षा में अभियुक्त पर उत्पीड़न की पद्धतियों, यातना का प्रयोग करने की अनुज्ञा नहीं देती है किन्तु पुलिस साधारणतः अपराध को हल करने की दृष्टि से इन पद्धतियों का आश्रय लेती है। किसी संदिग्ध व्यक्ति को, कुछ विश्वसनीय जानकारी या सामग्री प्राप्त होने पर, गिरफ्तार करना पुलिस का विधि मान्य अधिकार है, किन्तु गिरफ्तारी विधि के अनुसार ही होनी चाहिए और पूछताछ के साथ यातना और उत्पीड़न पद्धति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। पूछताछ और अन्वेषण, सही अर्थ में और अन्वेषण को प्रभावी बनाने के लिए सप्रयोज्य होने चाहिए। किसी व्यक्ति को यातना देकर और उत्पीड़न पद्धितियों का प्रयोग करके पुलिस बंद दरवाजे के पीछे वह सब या लेगी जिसका हमारी विधिक व्यवस्था की मांग प्रतिषेध करती है। यदि विधि के अभिरक्षक स्वयं अपराध करने में लिप्त होते हैं तो समाज का कोई भी सदस्य संरक्षित और सुरक्षित नहीं रहेगा। इस स्थिति में, अभिरक्षा में यातना क्षति या मृत्यु के मौकों को समाप्त करने या किसी भी हद पर न्यूनतम करने के लिए विधि का संशोधन करना उचित होगा। जब किसी व्यक्ति को किसी संज्ञेय अपराध के लिए बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है तब पुलिस अधिकारी के लिए अभियुक्त से उसके किसी ऐसे नातेदार या मित्र का नाम जिसे वह गिरफ्तारी के बारे में जानकारी देना चाहेगा, अभिप्राप्त करना अनिवार्य होना चाहिए और उसे गिरफ्तारी के बारे में सूचना देनी चाहिए[6] जब अभियुक्त को किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब उस मजिस्ट्रेट के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यह पूछना आज्ञापूर्वक होना चाहिए कि क्या उसे अभिरक्षा में किसी यातना या दुर्व्यवहार की शिकायत है और उसको यह भी सूचित किया जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 54 के अधीन उसे चिकित्सीय जांच कराने का अधिकार प्राप्त है।[7] बहुधा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को इस अधिकार की जानकारी नहीं होती है और उसके अज्ञान के कारण, वह मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने इस अधिकार का प्रयोग करने में असमर्थ रहता है भले ही हवालात में पुलिस द्वारा उसे यातना पहुंचाई गई हो या दुर्व्यवहार किया गया हो। अतः यह आवश्यक है कि विधि का संशोधन किया जाना चाहिए और गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से यातना के बारे में पूछना और संहिता की धारा 54 के अधीन चिकित्सीय जांच के उसके अधिकार का स्मरण कराना, मजिस्ट्रेट के लिए आज्ञापक होना चाहिए।

हवालात में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यातना या उसकी पिटाई साधारणतः बंद दरवाजों के पीछे की जाती है और जनता के किसी सदस्य को वहां रहने की अनुज्ञा नहीं होती है और ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं है जहां गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के कुटुंब के सदस्यों को भी उनसे भेंट करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है। विकसित देशों में यह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का भलीभांति मान्यताप्राप्त अधिकार है कि वह, जब अभिरक्षा में हैं तब पूछताछ के क्रम के दौरान अपने काउंसेल की उपस्थिति के लिए जिद करे। काउंसेल की विद्यमानता, पुलिस को पूछताछ के दौरान उत्पीड़न पद्धतियों का प्रयोग करने से विरत करेगी। दं० प्र० सं० अभिव्यक्त रूप से अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा कोई अधिभार प्रदान नहीं करती है किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने, अनुच्छेद 21 और 22 के विस्तार का निर्वचन करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त, पूछताछ के दौरान[8] अपने काउंसेल को रखने के लिए हकदार है, उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन देश की विधि है। चूंकि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय प्रत्येक पुलिस अधिकारी की जानकारी में नहीं लाए जाते हैं, अतः इस बाबत विधि

6. शीला बार्से बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए आई आर 1983 एस सी 378 पैरा 4.

7. शीला बार्से, प्रयोक्त।

8. नन्दिनी सतपथी बनाम पी० एल मुखर्जी, 1978 सी आर एल जे 958 पैरा 58, 59 कृष्णास्वामी अय्यर, न्यायमूर्ति के अनुसार।

का संशोधन करना ठीक और समुचित होगा। पूर्वोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41, 50 और 56 का संशोधन आवश्यक हो सकता है।

प्र०इ०रि० का अभिलिखित न किया जाना

किस पुलिस अधिकारी के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट साधारणतः अभिलिखित नहीं की जाती है। सामान्यतः, किसी अपराध के किए जाने से संबंधित प्र० इ० रि० के अभिलेखन के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी, परिवादी को वापस कर देगा यदि परिवाद, पुलिस के विरुद्ध है। इसलिए, अभिरक्षान्तर्गत यातना, हिंसा और क्षति के मामलों में, यदि शिकार व्यक्ति या इसका निकट संबंधी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट करने के लिए कदम उठाता है तो भी वे साधारणतः अपने प्रयत्न में असफल रहते हैं। इत्तिला अभिलिखि करने से पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की ओर से इंकार करने पर, परिवादी पुलिस के उच्चाधिकारियों अर्थात् पुलिस अधीक्षक, पुलिस उप महानिरीक्षक, और पुलिस महानिरीक्षक तक भी पहुंचने के लिए हकदार हैं किन्तु साधारणतः पुलिस विभाग के उच्च प्राधिकारी इन परिवादों को, अपने अधीनस्थ अधिकारियों के लिए नरमदिली के कारण गंभीरता से नहीं लेते हैं। यह सत्य है कि कुछ मामलों में पुलिस अधीक्षक या उच्च अधिकारियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित करने और मामले का अन्वेषण करने के लिए कदम उठाए हैं। किन्तु, यदि पूर्ण रूप से विचार किया जाए तो शिकार व्यक्ति या उसके निकट संबंधियों की प्रेरणा पर पुलिस के विरुद्ध प्र० इ० रि० अभिलिखित नहीं की जाती है। अनेक मामलों में व्यथित पक्षकार न्यायालय पहुंचा है और उसके निदेश पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई है और मामले का अन्वेषण किया गया है और अभियोजन आरंभ किया गया है। किन्तु प्रत्येक व्यथित व्यक्ति के लिए ऐसा चक्करदार अनुतोष अभिप्राप्त कर पाना संभव नहीं है। इन परिस्थितियों में, विधि का संशोधन करके स्थिति को संभालना आवश्यक है। यदि पुलिस, प्र० इ० रि० अभिलिखित करने से इंकार करती है, तो व्यथित व्यक्ति को, क्षति यातना के मामले में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष और अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष याचिका फाइल करने का अधिकार होना चाहिए। और इस प्रकार की गई याचिका को दं० प्र० सं० के अधीन अन्वेषण और जांच के प्रयोजन के लिए प्र० इ० रि० के रूप में माना जाना चाहिए।

अभिरक्षान्तर्गत अपराधों में परिवाद का अन्वेषण

जैसी विधि इस समय है, उसके अनुसार अभिरक्षा में यातना, क्षति या मृत्यु की बाबत पुलिस के विरुद्ध किसी परिवाद का अन्वेषण भी पुलिस द्वारा किया जाना अपेक्षित है, किन्तु ऐसी जांच प्रभावी और पूर्वाग्रह मुक्त नहीं हो सकती[9]। इस स्थिति से निपटने के लिए, कुछ मामलों में, पुलिस यातना के विरुद्ध अन्वेषण केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो को सौंपा गया है किन्तु विद्यमान विधि के अधीन के० आ० ब्यूरो अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के सभी मामलों का अन्वेषण हाथ में नहीं ले सकता, क्योंकि अनेक मामलों में ऐसे अन्वेषण के लिए राज्य सरकारों की सहमति उपलब्ध नहीं हो सकती है। आदेश प्रक्रिया, ऐसी परिवादों को अन्वेषण और जांच करने के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण रखना होगा, और यह कार्य प्रस्तावित मानव में अधिकार आयोग को सौंपा जा सकता है। किन्तु, ऐसे आयोग के अभाव में, ऐसे मामलों में वस्तुपरक और ठीक रीति से कार्रवाई करने के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण रखना आवश्यक होगा। एक तरीका यह हो सकता है कि न्यायालयों को ऐसी परिवादों में जांच करने के लिए प्राधिकृत किया जाए। संहिता की धारा 176 के अधीन, किसी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की जब वह अभिरक्षा में हो, मृत्यु की दशा में जांच, ऐसी मृत्यु समीक्षा करने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट द्वारा की जाएगी। इस जांच का उद्देश्य मृत्यु के कारण का सत्यापन करना है। यह जांच, न्यायिक जांच है किन्तु मजिस्ट्रेट, न्यायालय के रूप में कृत्य नहीं करता है और जांच रिपोर्ट में अंतर्विष्ट मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट या कथन मुख्य साक्ष्य का गठन नहीं करती है[10]। तथापि, आयोग का यह मत है कि पुलिस अभिरक्षा में कारित यातना या क्षति की परिवाद की दशा में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को, जो जिला में मजिस्ट्रेटों का प्रमुख है, परिवाद की जांच करने की शक्ति होनी चाहिए और इस प्रयोजन के लिए अपनी निजी रूचि के पुलिस अधिकारियों की सहायता अभिप्राप्त कर सकता है। अभिरक्षान्तर्गत मृत्यु के मामलों में सेशन न्यायाधीश को उस विषय की जांच करने का प्राधिकार विहित किया जाना चाहिए। यदि सेशन न्यायाधीश मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मेट्रो पोलिटेन मजिस्ट्रेट द्वारा जांच

9. राज्य बनाम आर एस यादव, ए आई आर 1985 एस सी 145.

10. (1955) आई एस सी आर 1083.

पर, प्रथम दृष्टया मामला बनता है तो सेशन न्यायधीश या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपचारी अधिकारियों के विरुद्ध मामलों के रजिस्ट्रीकरण के लिए निदेश देने में सक्षम होना चाहिए। यह पद्धति पुलिस के विरुद्ध परिवादों की जांच करने में जागरूकता और वस्तुपरकता सुनिश्चित कर सकती है।

विधि के अधीन कोई भी लोक सेवक, जिनमें पुलिस अधिकारी भी हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन राज्य की मंजूरी के बिना किसी अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है। निसंदेह न्यायालय के ऐसे अनेक विनिश्चय हैं कि अभिरक्षा में यातना, क्षति या मृत्यु कारित करना किसी पुलिस अधिकारी के पदीय कर्तव्यों के निर्वहन के अंतर्गत नहीं है और ऐसे मामलों में धारा 197 लागू नहीं की जा सकती किन्तु निरपवादतः अभियोजन का सामना करने के लिए बाध्य पुलिस के सदस्यों द्वारा दंड प्रक्रिय संहिता की धारा 197 के अधीन, मंजूरी के अभाव का तकनीकी अभिवाक् किया जाता है। मंजूरी की आश्यकता की बाबत विरोध से मामलों के विचारण में अत्यधिक विलंब होता है अतः पुलिस अधिकारी के अभियोजन के लिए, जिसके विरुद्ध सेशन न्यायाधीश/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा की गई जांच से प्रथम दृष्टया मामला बनता है, सरकार की मंजूरी की आवश्यकता समाप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संशोधन करना आवश्यक होगा इस उद्देश्य की प्राप्ति के क्रम में धारा 197 की उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित रीति में एक परन्तु भी अंतःस्थापित किया जाना आवश्यक होगा :—

> "इस धारा म अंतर्विष्ट कोई बात ऐसे अभिरक्षान्तर्गत अपराध की दशा में लागू नहीं होगी जहां न्यायलिय का जांच पर प्रथम दृष्टया यह मत है कि अभियुक्त लोक सेवक ने उसकी अभिरक्षा के भीतर दांडिक प्रकृति का कोई अपराध किया है।"

विधि के अधीन कोई भी लोक सेवक, जिनमें पुलिस अधिकारी भी हैं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन राज्य की मंजूरी के बिना किसी अपराध के लिए अभियोजित नहीं किया जा सकता है। निःसंदेह न्यायालय के ऐसे अनेक विनिश्चय हैं कि अभिरक्षा में यातना, क्षति या मृत्यु कारित करना किसी पुलिस अधिकारी के पदीय कर्तव्यों के निर्वहन के अंतर्गत नहीं है और ऐसे मामलों में धारा 197 लागू नहीं की जा सकती किन्तु निरपवादतः अभियोजन का सामना करने के लिए बाध्य पुलिस के सदस्यों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन, मंजूरी के अभाव का तकनीकी अभिवाक् किया जाता है। मंजूरी की आवश्यकता की बाबत विरोध से मामलों के विचारण में अत्यधिक विलंब होता है अतः पुलिस अधिकारी के अभियोजन के लिए, जिसके विरुद्ध सेशन न्यायाधीश/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा की गई जांच से प्रथम दृष्टया मामला बनता है, सरकार की मंजूरी की आवश्यकता समाप्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संशोधन करना आवश्यक होगा इस उद्देश्य की प्राप्ति के क्रम में धारा 197 की उपधारा (1) के अधीन निम्नलिखित रीति में एक परन्तु भी अंतःस्थापित किया जाना आवश्यक होगा :—

> "इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात ऐसे अभिरक्षान्तर्गत अपराध की दशा में लागू नहीं होगी जहां न्यायालय का जांच पर प्रथम दृष्टया यह मत है कि अभियुक्त लोक सेवक ने उसकी अभिरक्षा के भीतर दांडिक प्रकृति का कोई अपराध किया है।"

प्रतिकर

सभ्यता के विकास के साथ-साथ, व्यष्टि का लोक सेवकों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध प्रत्यास्थापन और प्रतिकर का अधिकार सभ्य राष्ट्रों के मध्य भलीभांति मान्यता प्राप्त कर चुका है। भारत में, स्वतंत्रता के पूर्व लोक सेवकों के अपकृत्य के लिए सरकार का दायित्व सीमित था और उससे प्रभावित व्यक्ति सिविल वाद फाइल करके अपकृत्य विधि में अपने अधिकार को प्रवृत्त करा सकता था। किन्तु यदि शासकीय कृत्य के प्रयोग में नुकसान या क्षति कारित हुई थी तो उस व्यक्ति को कोई प्रत्यास्थापन या प्रतिकर उपलब्ध नहीं था। स्वतंत्रता के बाद भी राज्य के शासकीय और अशासकीय कृत्यों के बीच विभेद बनाया रखा गया था और उन्मुक्ति के लिए राज्य का दावा[11] उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था किन्तु इस विभेद का औपचारिक रूप से परित्याग किए बिना उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में अधिक वास्तविक रुख अपनाया है तथा "अशासकीय" पद के अंतर्गत कृत्यों का क्षेत्र व्यापक बनाया था। इसके अतिरिक्त भारत के उच्चतम न्यायालय ने अनेक अभूतपूर्व निर्णयों में प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का विस्तार किया है

11. कस्तूरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए आई आर 1965 एस सी 1039.

और अभिरक्षान्तर्गत अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकारात्मक तथा पुनर्वासात्मक राहतों की व्यवस्था की है। शासकीय और अशासकीय कृत्यों के प्रयोग के बीच विभेद के बावजूद उच्चतम न्यायालय ने पुलिस तथा राज्य के अन्य निरुद्धकारी प्राधिकारियों द्वारा शिकार व्यक्ति को कारित क्षति के लिए शिकार व्यक्तियों और उनके निकट संबंधियों को प्रतिकर प्रदान किया है[12] ऐसी नुकसानी पुलिस द्वारा गोली चलाए जाने से उद्भूत क्षतियों के लिए, जिसमें भीड़ या बलवा में निर्दोष नागरिक मारे जाते हैं, प्रदान की गई है। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने प्रभावित व्यक्तियों को प्रतिकर प्रदान किया है किन्तु कोई भी एक रूप सिद्धांत कथित नहीं किए गए हैं। विनिर्दिष्ट विधान के अभाव में अनिश्चय की स्थिति है और न्यायालय में प्रतिकर प्रदान करने में या उसकी प्रमात्रा अवधारित करने में अपने निजी मानदंड अपनाए हैं विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या प्रतिकर प्रदान करने के लिए विधायी उपबंध किया जाना चाहिए, और यदि ऐसा है, तो प्रतिकर की रकम अवधारित करने के लिए कौन से सिद्धांत होने चाहिए? प्रतिकर के लिए एक और प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की मृत्यु की दशा में त्रुटि के सबूत के बिना विनिर्दिष्ट सीमा तक प्रतिकर के लिए उपबंध किया जाना चाहिए? यह महसूस किया गया है कि ऐसा उपबंध सामाजिक न्याय और विधि सम्मत शासन के हित में उचित होगा। दूसरा रोचक प्रश्न जो प्रतिकर के लिए उत्पन्न होता है कि क्या यातना और क्षति के शिकार व्यक्ति को और उसकी मृत्यु की दशा में उसके निकट संबंधियों को एक बार में प्रतिकर दिया जाना चाहिए? या शिकार व्यक्ति के नातेदारों के जीवन निर्वाह और जीवन यापन के साधनों का उपबंध करने के लिए निरंतर दिया जाना चाहिए? हमारे देश में प्रचलित साधारण विधि के अधीन दांडिक न्यायालय या उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा उनकी रिट अधिकारिता के अधीन प्रतिकर अथवा अनुग्रहपूर्वक संदाय का कोई अवार्ड या कार्यपालक द्वारा अनुग्रहपूर्वक संदाय, शिकार व्यक्ति या उसके निकट संबंधियों के किसी सिविल न्यायालय के समक्ष अपकृत्य में नुकसानी के लिए डिग्री अभिप्राप्त करने के अधिकार के अधीन रहते हुए है। यदि दांडिक न्यायालय को अभिरक्षान्तर्गत अपराध के शिकार व्यक्ति या उसके निकट संबंधी को प्रतिकर प्रदान करने की शक्ति विनिहित की जाती है तो फिर उन्हें अपकृत्य में सिविल न्यायालय के समक्ष एक और मुकदमेबाजी क्यों करनी चाहिए। एक मत के अनुसार दांडिक न्यायालय और सिविल न्यायालय और रिट अधिकारिता के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा अवार्ड की गई रकम अंतिम है और प्रतिकर की अंतिम रकम सिविल न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप में मामले के साक्ष्य और परिस्थितियों की छानबीन के आधार पर विचार करके अवधारित की जाती है। इस प्रश्न पर और विचार विमर्श किया जाना अपेक्षित है।

उच्चतम न्यायाल ने मृतक के आश्रित को सहारा देने के लिए प्रतिकर मंजूर किया है।[13] उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों के विश्लेषण से पता लगता है कि न्यायालय ने ऐसे शिकार व्यक्तियों के, जिनकी पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हुई थी, विधिक वारिसों को अंतरिम उपाय[17] के रूप में 75,000 रुपए[14], 1,50,000 रुपए[15] और 2,00,000 रुपए[16] के अवार्ड किए हैं। यह उपदर्शित करता है कि प्रतिकर की रकम एक समान नहीं रही है और कोई भी सिद्धांत अधिकथित या अनुसरित नहीं किए गए हैं। प्रतिकर का अवार्ड हर मामले में, संभवतः प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर[18] भिन्न-भिन्न रहा है।

12. राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती, ए आई आर 1962 एस सी 933; सर वासव पाटिल बनाम मैसूर राज्य, ए आई आर 1977 एस सी 1749; नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य, (1993) 2 एस सी सी 746 गुजरात राज्य बनाम मेमन मोहम्मद हाजी हुसैन, ए आई आर 1967 एस सी 1885; रुदल शाह बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1983 एस सी 1086; सेबस्तैन एम हंगरे बनाम भारत संघ, (1984) 1 एस सी सी 339; भीम सिंह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य, 1989 अनु० एस सी 564; भीम सिंह बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य (1985) 4 एस सी सी 677; सहेली बनाम पुलिस आयुक्त (1990) एस सी सी 422.

13. रुदल शाह बनाम बिहार राज्य (1983) 4 एस सी सी 141; (1983) 3 एस सी आर 508; सेबस्तैन एम होंग्रे बनाम भारत संघ (1984) एस सी सी 339 (1); भीम सिंह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य, 1984 अनु० एस सी सी 504; भीम सिंह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य (1985) 4 एस सी सी 677; सहेली : ए वीमेन्स रिसोर्स सेंटर बनाम आय-कर आयुक्त दिल्ली पुलिस मुख्यालय (1990) 1 एस सी सी 422.

14. पीपुल्स यूनियन आफ डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम पुलिस आयुक्त (1984) 4 एस सी सी 730.

15. नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (1993) 2 एस सी सी 746.

16. सविन्दर सिंह ग्रोवर बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (1993) क्रिमिनल ला रिपोर्टर, 163.

17. रुदल शाह बनाम बिहार राज्य (1983) 4 एस सी सी 141.

18. देखिए, पूर्वोक्त, टिप्पण 13 से 16 तक।

यदि विधि से अपेक्षा है कि वह सिद्धांत अधिकथित करे तो प्रश्न उठता है कि प्रतिकर की प्रमात्रा अवधारित करने के लिए क्या सूत्र अथवा कौन से सिद्धांत विहित किए जाने चाहिएं। भारतीय न्यायालयों ने सदोष मृत्यु की दशा में मृतक के आश्रितों को संदेय प्रतिकर की रकम अवधारित करने में दो प्रकार के सूत्रों अर्थात् ब्याज सिद्धांत और बहुगुणज सिद्धांत का अनुसरण किया है। ब्याज सिद्धांत की दशा में प्रतिपादना से यह अनुध्यात है कि केवल ऐसी रकम दावेदारों को संदेय होनी चाहिए जो वार्षिक आश्रितता के तुल्य ब्याज का प्रोदभवन सुनिश्चित करेगी यदि वह किसी बैंक में दीर्घकालिक आधार पर विनिहित की गई होती। बहुगुणज सिद्धांत के अधीन, नुकसानी आश्रितता की वार्षिक रकम को एक ऐसे गुणज से गुणा करके उस आधार पर परिकलित की जाती है जो जीवन में उलट फेर की अनिश्चयता की देखरेख के लिए है। रकम अवधारित करते समय नुकसानी, मानसिक पीड़ा, कष्ट, गरिमा की हानि, स्वतन्त्रता की हानि और मृत्यु[19] के लिए तोषण का प्रतिनिधित्व करे। सदोष मृत्यु की दशा में प्रतिकर के अवधारण के लिए इंगलिश न्यायालयों द्वारा[20] अधिकथित सिद्धांतों का, भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा[21] अनुसरण किया गया है। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं:—

"(1) मृतक की जीवन की संभावना का उसकी आयु, उसके शारीरिक स्वास्थ्य और किसी पश्चात्वर्ती दुर्घटना द्वारा उसके जीवन के समय पूर्व परिसमापन की संभावना को दृष्टि में रखते हुए अनुमानित की जानी है ;

(2) उसकी पत्नी की भावी व्यवस्था के लिए अपेक्षित रकम उस रकम को ध्यान में रखते हुए अनुमानित की जानी चाहिए जिसे मृतक अपने जीवन काल के दौरान अपनी पत्नी पर खर्च करता था ;

(3) इस अनुमानित वार्षिक राशि में व्यक्ति के जीवन के अनुमानित वर्षों की संख्या के द्वारा गुणा किया जाना चाहिए ;

(4) उक्त रकम, संपदा में पत्नी के हित के वर्धन के लिए कटौती करने के पश्चात्, उसकी मृत्यु पर संदेय एक युक्त रकम के तुल्य सही रकम अभिप्राप्त करने के लिए उक्त रकम घटाई जानी चाहिए ; और

(5) पत्नी की उससे पूर्व मृत्यु की संभावना के लिए भी कटौतियां की जानी चाहिएं यदि पति का उसके जीवन का पूर्ण काल था और इस संभावना के लिए भी कटौती की जानी चाहिए कि विधवा का पुनर्विवाह होने की दशा में उसकी वित्तीय स्थिति में सुधार हो सकता है।"

इस संबंध में 14 सितंबर, 1992 को आयोजित मानव अधिकार संबंधी मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन के समक्ष अभिरक्षान्तर्गत अपराधों के शिकार व्यक्तियों या उनके निकट संबंधियों को दी जाने वाली राहत की बाबत रखे गए कुछ प्रस्तावों को निर्देशित करना उचित होगा। किए गए प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव में यह अनुध्यात था कि मृत्यु की दशा में प्रतिकर की रकम दांडिक न्यायालय द्वारा सभी सुसंगत बातों को गणना में लेकर अवधारित की जानी चाहिए तथा न्यायालय अंतरिम राहत का संदाय भी अनुज्ञात कर सकता है। ऐसे अंतरिम राहत की मात्रा मृत्यु की दशा में 10,000 रुपए से अन्यून और 25,000 रुपए तक हो सकती है और अन्य क्षति की दशा में 10,000 रुपए से अधिक नहीं हो सकेगी। जहां तक मृत्यु की दशा में संदेय अंतिम राहत की बात है प्रस्ताव में 5,00,000 रुपए की और क्षति की दशा में 50,000 रुपए की अधिकतम रकम अनुध्यात थी।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 न्यायालय को निर्णय पारित करते समय अवार्ड किए गए जुर्माने से प्रतिकर के संदाय के लिए निदेश देने की शक्ति प्रदान करती है। प्रतिकर की रकम अभियोजन में उपगत व्यय को पूरा करने और अपराध द्वारा कारित क्षति की हानि के प्रतिकर के लिए अनुध्यात है यदि वह प्रतिकर सिविल न्यायालय में वसूलनीय है। इस उपबन्ध के अधीन प्रतिकर के संदाय का आदेश तभी दिया जा सकता है जबकि अभियुक्त सिद्धदोष हो जाता है और दंडादिष्ट किया जाता है और जुर्माना अधिरोपित किया जाता है किन्तु प्रतिकर का संदाय अपील के अध्यधीन है। उच्चतम न्यायालय ने इस धारा का

19. सहेली बनाम पुलिस आयुक्त, 1961, एस सी 442.

20. (1951) ए सी 601.

21. ए आई आर 1962 एस सी 1.

संकुचित रूप से निर्वचन किया है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को प्रथमदृष्ट्या यह विचार करना है कि क्या किसी विशिष्टता के लिए दंड या जुर्माना अंततः आवश्यक है जबकि अपराधी को मृत्यु या आजीवन कारावास का दंड दिया जाता है यदि जुर्माने का अवार्ड किया जाता है तो भी यह अधिक नहीं होना चाहिए।[22] धारा 357 के उपबंध प्रतिकर के लिए हकदार व्यक्तियों को प्रतिस्थापन या प्रतिकर का उपबंध करने के लिए पर्याप्त नहीं है :

पुलिस के अतिरिक्त राजस्व आसूचना निदेशालय, प्रवर्तन निदेशालय, तटरक्षक, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (के०पु०रि०ब०) सीमा सुरक्षा बल (सी०सु०ब०), केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (के०औ०सु०ब०), राज्य सशस्त्र बल जैसे अनेक अन्य सरकारी प्राधिकरण, आसूचना ब्यूरो, अनुसंधान और विश्लेषण विंग (रॉ), केन्द्रीय आसूचना ब्यूरो (के०आ०ब्यू०), केन्द्रीय अन्वेषण विभाग (के०अ०वि०), जैसे आसूचना अभिकरण यातायात पुलिस, अश्वारोही पुलिस और इण्डो तिब्बत बार्डर पुलिस भी हैं जिन्हें किसी व्यक्ति को आवश्यक वस्तु अधिनियम, उत्पाद-शुल्क और सीमाशुल्क अधिनियम, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, आदि के अधीन आर्थिक अपराधों के अन्वेषण के संबंध में निरुद्ध करने और उससे पूछताछ करने की शक्ति है।

पुलिस प्राधिकारियों[23] से भिन्न प्राधिकारियों की अभिरक्षा में यातना और मृत्यु के अनेक उदाहरण हैं। ऐसे मामलों में भी गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के हित के संरक्षण के लिए विधि का संशोधन करना आवश्यक होगा इससे विधि के सुसंगत उपबंधों का संशोधन अपेक्षित हो सकता है।

एक और दृष्टिकोण भी है जिस विचार करना आवश्यक है। भारत में पुलिस को विशेष रूप से कानून और व्यवस्था की गिरती हुई स्थिति, सांप्रदायिक बलों, राजनैतिक उठापटक, विद्यार्थी आंदोलन, आतंकवादी गतिविधियों, उग्रवादियों जैसे कठोर राजनीतिज्ञों तथा अन्य बातों के साथ-साथ सशस्त्र गिरोहों और अपराधियों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए कठिन और नाज़ुक कार्य करने पड़ते हैं। उग्रवादी, आतंकवादी, मादक पदार्थों के व्यवसायी, तस्कर जैसे मजे हुए अनेक अपराधियों ने, जिन्होंने गिरोहों का गठन किया है समाज में अपनी गहरी जड़ें जमा की हैं। यह स्पष्ट मनोदर्शन किया जा सकता है कि मूल अधिकारों के अधिकथित उदारीकरण और प्रवर्तन से ऐसे कठोर अपराधियों के प्रवर्गों द्वारा अपराधों का पता लगाने में और भी कठिनाइयां हो सकती हैं कतिपय क्षेत्रों में यह महसूस किया गया है यदि हम उन्हें उनके मूल अधिकारों और मानव अधिकारों से संबंधित सुरक्षा और हितों के अधिक उपायों बनाम उनकी दैहिक यातना पर विचार करें तो ऐसे अपराधी आपराधिकता की कोई तत्व या भाव प्रकट किए बिना बेदाग निकल जाएंगे। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए न्याय की दृष्टि से एक संतुलित पहुंच आवश्यक है। इसका महत्व समाज की इस प्रत्याशा को दृष्टि में रखने पर और बढ़ जाता है कि पुलिस अपराधियों के साथ दक्षतापूर्वक और प्रभावी रीति से कार्रवाई करें।

विचारार्थ विषय

उपर्युक्त परिचर्चा को ध्यान में रखते हुए विचारार्थ निम्नलिखित विषय उद्भूत होंगे :—

1. क्या पुलिस की किसी व्यक्ति को किसी भी समय और किसी भी स्थान पर, मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय से किसी आदेश या अनुज्ञा के बिना गिरफ्तार करने की अनिर्बन्धित शक्ति बनी रहनी चाहिए?

2. क्या उस संदिग्ध व्यक्ति को जिसे पूछताछ के लिए निरुद्ध किया गया है, पूछताछ के समय उसके काउंसेल की उपस्थिति के लिए जिद करने का अधिकार प्रदान करने के लिए विधि का संशोधन किया जाना चाहिए ? यदि संशोधन किया जाता है तो क्या यह अपराधों के अन्वेषण में विलंब और उनमें हस्तक्षेप नहीं करेगा ?

3. क्या विधि को यह उपबंध करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी पर पुलिस अधिकारी या व्यक्ति की अभिरक्षा रखने वाले किसी लोक सेवक के लिए आज्ञापक होना चाहिए कि वह पूछताछ आरंभ करने से पूर्व उस व्यक्ति की चिकित्सीय जांच करवाएं ?

22. 1972 एस सी सी पैरा 12.

23. सरविन्द्र सिंह ग्रोवर बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य (1993) क्रिमिनल ला रिपोर्टर 163 (एस सी)।

4. क्या अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को कारित किसी क्षति या पारिणामिक मृत्यु की दशा में पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध उपधारणा के उपबंध के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का संशोधन किया जाना चाहिए? क्या उपधारणा खंडनीय होनी चाहिए ?

5. क्या पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की यातना या मृत्यु के परिवाद की जांच करने के लिए किसी स्वतंत्र अभिकरण के लिए विधि द्वारा उपबंध किया जाना चाहिए ? यदि ऐसा है तो वह अभिकरण कौन सा होना चाहिए ? यदि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा यातना और क्षति की दशा में जांच की जाती है तो क्या यह प्रयोजन पूर्ण नहीं होगा और क्या उन्हें अपनी रुचि के दांडिक अन्वेषण विभाग या किसी पुलिस अधिकारी की सहायता अभिप्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए ?

6. यदि यातना, क्षति या मृत्यु का मामला प्रथमदृष्ट्या पाया जाता है तो क्या आगे कोई अन्वेषण किए बिना और अपचारी पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध, आगे कोई अन्वेषण किए बिना और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन ऐसे अपचारी लोक सेवकों के अभियोजन के लिए सरकारों की मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना मामला रजिस्टर किया जाना चाहिए ?

7. क्या किसी व्यक्ति को कारित मृत्यु या क्षति की दशा में बिना त्रुटि के आधार पर सरकार द्वारा प्रतिकर के अवार्ड के लिए उपबंध होना चाहिए ? यदि ऐसा है तो नियत किए जाने के लिए कितनी रकम समुचित रकम होगी। क्या पूर्वोक्त अपचारी अधिकारी का विचारण करने वाले न्यायालय को शिकार व्यक्ति या शिकार व्यक्ति के आश्रितों को किसी सिविल न्यायालय के समक्ष अपकृत्य में नुकसानी अभिप्राप्त करने के उनके अधिकार पर विचार किए बिना अंतिम प्रतिकर का अवार्ड करने की शक्ति होनी चाहिए ?

8. क्या विधि में ऐसे मामले में अंतरिम राहत के लिए उपबंध होना चाहिए जहां जांच के परिणामस्वरूप अभिरक्षा में यातना, क्षति के कारण मृत्यु का प्रथमदृष्ट्या मामला बन जाता है?

9. क्या विधि को अपचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम वसूल करने के लिए सरकार को शक्ति प्रदान करनी चाहिए ?

10. क्या पूर्वोक्त उपाय पुलिस के कार्यकरण और नैतिक चरित्र पर मामलों के अन्वेषण में प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगे और यह कि क्या इसका परिणाम अपराधों का अन्वेषण नहीं होगा जो लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगा इन स्थितियों से बचने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए ?

पूर्वोक्त विषय ऐसे निर्धन लोगों के संरक्षण के लिए हमारी उद्विग्नता से उत्पन्न होते हैं जो साधारणतः अभिरक्षा में यातना के अध्यधीन हैं। विधि आयोग ने यह कार्य पत्र, समस्या के उन विभिन्न पक्षों को उपदर्शित करते हुए तैयार किया है जो न तो सम्पूर्ण है और न अंतिम, अपितु वे मात्र प्रायोगिक हैं। आयोग आभारी होगा यदि न्याय शास्त्रियों, न्यायाधीशो, वकीलों, विधि अध्यापको, और गैर सरकारी संगठनों, मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के सुविचारित अभिमत उसे उपलब्ध हो जाते हैं क्योंकि वे विधियों में संशोधन करने के लिए सरकार को सिफारिशें करने में आयोग के लिए सहायक होंगे। इस संबंध में, विधि के संशोधन या नई विधि के अधिनियमन या किसी स्कीम की विरचना के लिए किसी भी सुझाव का, जो लोक हित को अग्रसर करेगा, स्वागत किया जाएगा।

परिशिष्ट 2

कार्यपत्र पर प्राप्त टीका टिप्पणियां

प्रारंभिक

जैसे कि पहले कहा गया है कि विधि आयोग ने विभिन्न क्षेत्रों से राय प्राप्त करने के लिए "अभिरक्षा संबंधी अपराध" के बारे में एक कार्यपत्र परिचालित किया था। कार्यपत्र में विधि आयोग ने अभिरक्षा संबंधी अपराधों से संबंधित समस्याओं के विभिन्न पहलुओं के बारे में दस विवाद्यक विरचित किए थे।

आयोग ने विधि के संशोधन या नई विधि के अधिनियमन अथवा नई स्कीम विरचित करने के लिए अतिरिक्त सुझाव भी आमंत्रित किए थे।

कार्यपत्र नौ शिक्षाशास्त्रियों, बावन न्यायाधीशों, छप्पन अधिवक्ताओं, सभी राज्यों के पुलिस महानिदेशकों/पुलिस आयुक्तों, सभी राज्यों के होम गार्ड के कमांडेंट जनरलों, औद्योगिक सुरक्षा बल के महानिदेशक, केन्द्रीय जांच ब्यूरो के निदेशक, आसूचना ब्यूरो के निदेशक, प्रवर्तन निदेशक, भारत-तिब्बत सीमा पुलिस के महानिदेशक और पुलिस अनुसंधान और विकास के ब्यूरो के महानिदेशक की प्रास्थिति के चौहत्तर पुलिस अधिकारियों और बत्तीस गृह सचिवों को भेजा गया था। इन में से दो शिक्षा शास्त्रियों, पांच न्यायाधीशों, सात अधिवक्ताओं, बारह पुलिस अधिकारियों और नौ राज्य सरकारों, (जिनके अन्तर्गत संघ राज्यक्षेत्र भी हैं) से उत्तर प्राप्त हुए थे।

कार्यपत्र मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स, पीपुल्स यूनियन फार सिविल राइट्स जैसे स्वैच्छिक अभिकरणों को भी भेजा गया था, किन्तु यह खेद की बात है कि "अभिरक्षा संबंधी अपराध" के महत्वपूर्ण विषय पर, जो मानव अधिकारों के संरक्षण से सुबद्धतया संबंधित है, इन अभिकरणों से कोई उत्तर आयोग को प्राप्त नहीं हुआ।

1. गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति

विवाद्यक सं० 1

क्या पुलिस को मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय से किसी आदेश या अनुज्ञा के बिना किसी भी समय पर और किसी भी स्थान पर किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की अनिर्बंधित शक्ति जारी रहनी चाहिए।

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि पुलिस को गिरफ्तार करने की अनिर्बन्धित शक्ति जारी नहीं रहनी चाहिए। उनके विचार में पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने की शक्ति के प्रयोग के विरुद्ध समुचित जवाबदेही का तंत्र निर्मित करना होगा।

माननीय न्यायाधीशों के विचार

भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने विवाद्यक सं० 1 का उत्तर सरकारात्मक रूप में दिया। ऐसा ही सभी चार उच्च न्यायालयों ने किया। वे विद्यमान उपबंधों को संतोषप्रद मानते हैं। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के अनुसार संविधान ने चौबीस घंटे के भीतर निरोध को न्यायिक अभिरक्षा में संपरिवर्तित करने की बाध्यता अधिरोपित की है, जो पर्याप्त से भी अधिक है।

अधिवक्ताओं के विचार

सात में से पांच ने गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति का समर्थन किया और एक ने प्रश्न का विचलन किया और विवाद्यक का प्रत्यक्षतः उत्तर नहीं दिया। कलकत्ता बार काउंसिल ने नकारात्मक उत्तर दिया है और गिरफ्तार करने के बारे में पुलिस की शक्ति निर्बंधित करने का सुझाव दिया है। वे अनुभव

करते हैं कि "संज्ञेय" पद पुनः परिभाषित किया जाना चाहिए जिससे कि पुलिस समुचित मामलों में ही वारंट के बिना गिरफ्तार कर सके। विधि में गिरफ्तार करने का कारण अभिलिखित करने के लिए भी पुलिस अधिकारी को आदिष्ट होना चाहिए और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 का लोप किया जाए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह में से ग्यारह अधिकारियों ने सुझाव दिया है कि गिरफ्तारी के बारे में विद्यमान विधि में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है और मिजोरम (इम्फाल) से एक अधिकारी सहमत हो गया है और चाहता है कि विधि में संशोधन किया जाए। वे अनुभव करते हैं कि गिरफ्तार करने की शक्तियां अनियंत्रित नहीं हैं। एक अधिकारी कहता है कि गिरफ्तार करने की शक्ति, कठोर हृदय उग्रवादियों, आतंकवादियों, अवैध औषध बेचने वालों और तस्करों के मामलों को छोड़कर नियंत्रित होनी चाहिए। अन्य कहते हैं कि गिरफ्तार करने की उनकी शक्ति के बारे में कोई शर्त नहीं लगानी चाहिए। दूसरी ओर अरुणाचल प्रदेश, ईटानगर के अतिरिक्त महानिरीक्षक विधि आयोग के प्रस्ताव से सहमत है।

राज्य सरकारों के विचार

छह राज्य सरकारों, अर्थात् गोवा, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, राजस्थान और बिहार सरकार ने गिरफ्तार करने की पुलिस शक्तियों का समर्थन किया क्योंकि विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। उनका विचार है कि यदि पुलिस अधिकारी से अपेक्षा की जाए कि वह न्यायालय से गिरफ्तार करने की अनुज्ञा ले, तो संदिग्ध व्यक्ति दूर भाग सकता है। गोवा सरकार अनुभव करती है कि यदि पुलिस को मजिस्ट्रेट या किसी अन्य न्यायालय से अनुज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है तो यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के विरुद्ध होगा और हत्यारा भी, अपराध के स्थान से भाग जाएगा। यह विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों को हिंसा में आलिप्त होने के पश्चात् भाग जाने की अनुज्ञा देने जैसा होगा। यदि यह शक्ति छीन ली जाती है तो इसका विधि और व्यवस्था की स्थिति पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। आन्ध्र प्रदेश की सरकार का विचार है कि क्योंकि धारा 220, धारा 330, धारा 331 के अधीन भारतीय दंड संहिता में अन्तर्विष्ट दंडात्मक उपबंध अपर्याप्त है। और तकरीबन प्रभावहीन हैं इसलिए ऐसी शक्तियों के दुरुपयोग की हर प्रकार से संभावना है। उन्होंने सुझाव दिया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन गिरफ्तार करने की शक्ति में कमी की जाए और यह आतंकवादियों, कठोर हृदय अपराधियों तक सीमित होनी चाहिए किन्तु अन्य के लिए नहीं होनी चाहिए। राज्य सरकारों/पांडिचेरी, मिजोरम, के संघ राज्य क्षेत्रों ने भी इस विचार का समर्थन किया है।

2. पूछताछ के समय पर काउंसेल की उपस्थिति
विवाद्यक सं० 2

क्या उस संदिग्ध व्यक्ति को, जिसे पूछताछ के लिए निरुद्ध किया जाता है, पूछताछ के समय अपने काउंसेल की उपस्थिति के लिए जोर देने के बारे में अधिकार प्रदान करने के लिए विधि का संशोधन करना चाहिए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाशास्त्रियों ने विधि आयोग द्वारा उठाए गए विवाद्यक का समर्थन किया है और विद्यमान विधि में संशोधन का सुझाव दिया है। उनमें से एक ने इसकी सफलता पर आशंका व्यक्त की, क्योंकि वह अनुभव करता है कि यह साध्य नहीं है। वह प्रश्न करता है कि निर्धन व्यक्ति का काउंसेल कौन है। दूसरे ने पारिवारिक मित्रों या विधिक काउंसिल जैसे तीसरे पक्षकार की उपस्थिति का सुझाव दिया है, जो पुलिस की शक्तियों की जवाबदेही के लिए सहायक होगा। उसने आगे सुझाव दिया है कि ज्येष्ठ पुलिस अधिकारी चयनित किए जाने चाहिए जो पुलिस थाना में एकाएक भेंट करें, यह सुनिश्चित करें कि अवैध गिरफ्तारियां न की जाएं और यातना पद्धति का उपयोग न किया करें। दोनों सहमत थे कि यदि कोई व्यक्ति किसी ग्राम में गिरफ्तार किया जाता है तो ग्राम के "ग्राम प्रधान" या "सरपंच" को भी सूचित किया जाए और गिरफ्तार व्यक्ति का पता ठिकाना भी गिरफ्तार व्यक्ति के कुटुम्ब और मित्रों को दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि कोई ऐसा "अभिरक्षा ज्ञापन" विहित किया जाना चाहिए जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति और पुलिस द्वारा ली गई संपत्ति के बारे में जानकारी प्रविष्ट की जानी चाहिए और गिरफ्तार करने

वाले पुलिस अधिकारियों का विवरण भी उसमें भरा जाना चाहिए इस विचार का जोगिन्द्र सिंह बनाम स्टेट आफ उत्तर प्रदेश, (1994)[3] जे टी (एस सी) 423 के मामलों में उच्चतम न्यायालय के हाल ही के निर्णय द्वारा अब समर्थन किया गया है।

माननीय न्यायाधीशों के विचार

दो उच्च न्यायालयों ने, अर्थात् जम्मू-कश्मीर और गौहाटी, नकारात्मक उत्तर दिया है। उनके अनुसार प्रस्तावित संशोधन से कुछ नहीं होगा और पूछताछ में विलम्ब होगा उन्होंने सुझाव दिया है कि पूछताछ इलैक्ट्रानिक और मनोवैज्ञानिक पैटर्न का प्रयोग करके वैज्ञानिक आधार पर की जानी चाहिए। उनके अनुसार मित्र और संबंधी को उपस्थिति पर्याप्त होगी और काउंसेल की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी इस विवाद्यक का नकारात्मक उत्तर दिया है। उसका विचार है कि विद्यमान प्रक्रिया में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है उसके अनुसार काउंसेल की उपस्थिति पूछताछ में विलम्ब करेगी। दूसरी ओर भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति ने कहा है कि अधिवक्ता की उपस्थिति समुचित होगी –आपवादिक मामलों में ही एकान्तता में पूछताछ के लिए न्यायालय से अनुज्ञा की जानी चाहिए। इस प्रकार चार न्यायिक रायों में से तीन गिरफ्तार व्यक्ति की पूछताछ के दौरान काउंसेल की उपस्थिति को अनुज्ञा देने के लिए विद्यमान विधि के संशोधन के प्रस्ताव के विरुद्ध हैं और न्यायमूर्ति आर० एन० मिश्र आपवादिक मामलों में पूछताछ के दौरान अधिवक्ता की सहायता का उपबंध करने के लिए संशोधन के पक्ष में हैं।

अधिवक्ताओं के विचार

सात में से चार ने पूछताछ के दौरान काउंसेल की उपस्थिति द्वारा विधिक सहायता का उपबंध करने के विधि आयोग के प्रस्ताव का स्पष्ट रूप में समर्थन किया। वे महसूस करते हैं कि काउंसेल की उपस्थिति वांछनीय है और अपराध की पूछताछ में विलम्ब नहीं करेगी और न ही उसमें किसी भी रीति में हस्तक्षेप करेगी। उनके अनुसार यह अनुच्छेद 22(1) के अनुरूप ही है और इसका नंदिनी सतपथी बनाम पी० एल० दानी, (1978 क्रिमीनल एल जे 968) शीर्षस्थ न्यायालय के विनिर्णय द्वारा समर्थन किया गया है।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह में से मणिपुर, इम्फाल से केवल एक अधिकारी ने पूछताछ के दौरान एक काउंसेल का उपबंध करने के लिए संशोधन का सुझाव दे कर प्रस्ताव का समर्थन किया है। ईटानगर से दूसरे ने सुझाव दिया कि किसी वकील की सहायता का उपबंध पूछताछ के बाद के प्रक्रम पर किया जा सकता है। दिल्ली, बम्बई, और उत्तर प्रदेश से शेष ज्येष्ठ पुलिस अधिकारी पूछताछ के समय काउंसेल की उपस्थिति के लिए विधि का संशोधन करना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि पूछताछ के समय काउंसेल की उपस्थिति कार्यवाही को प्रतिकूलतः प्रभावित करेगी और उससे विलम्ब होगा तथा अपराध के अन्वेषण में भी हस्तक्षेप होगा। सिक्किम से एक ज्येष्ठ आई पी एस अधिकारी अनुभव करता है कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है तो अन्वेषण असंभव हो जाएगा। इससे मामलों के अन्वेषण में हस्तक्षेप होगा और निरुद्ध व्यक्ति पर भयानक वित्तीय बोझ पड़ेगा। एक अन्य ज्येष्ठ अधिकारी (दिल्ली पुलिस का भूतपूर्व आयुक्त) का विचार है कि काउंसेल, बलात्संग, डकैती, लूट, आदि के मामलों को छोड़कर अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए।

राज्य सरकारों के विचार

भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों के नौ उत्तरों में से गोवा, आंध्र प्रदेश, मिजोरम, और पांडिचेरी की सरकारों ने पूछताछ के समय अभियुक्त के काउंसेल की उपस्थिति के लिए उसे हकदार बनाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41, 50 और 51 का संशोधन करने की दृष्टि से प्रस्ताव का समर्थन किया है। गोवा की सरकार ने भी नंदिनी सतपथी बनाम पी० एल० दानी 1978 क्रिमीनल एल जे 968 के निर्णय का उल्लेख किया है। आन्ध्र प्रदेश की सरकार कहती है कि अधिकतर देशों में पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को तत्काल अपने अटर्नी से संपर्क करने की अनुज्ञा दी जाती है। संविधान का अनुच्छेद 22 भी विनिर्दिष्टतः अधिकथित करता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी पसंद के विधिक काउंसेल की सलाह लेने और उसके द्वारा अपनी प्रतिरक्षा करने के अधिकार से इन्कार नहीं किया जाना चाहिए। आंध्र प्रदेश की सरकार का विचार

है कि इस प्रश्न पर विधि में विनिर्दिष्ट यह उपबंध करके विस्तार करना चाहिए कि पुलिस द्वारा पूछताछ आरंभ करने के पूर्व गिरफ्तार व्यक्ति को अपने विधिक काउंसेल की सलाह लेने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए । उसने यह भी दलील दी है कि जहां गिरफ्तार व्यक्ति विधिक काउंसेल के लिए असमर्थ है वहां राज्य को स्वयं मानव अधिकार आयोग या जिला विधिक सहायता समिति द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं के पैनल में से उसकी पसंद के किसी विधिक काउंसेल की सहायता उसको दी जानी चाहिए ।

शेष राज्य सरकारों ने ऐसे प्रस्ताव के साथ असहमति व्यक्त की है और उन्होंने कोई ऐसा अधिकार न देने का सुझाव दिया है क्योंकि इससे अपराध के अन्वेषण में विलम्ब होगा ।

3. पीड़ितों/संदिग्ध व्यक्तियों की चिकित्सीय जांच

विवाद्यक सं० 3

क्या विधि को यह उपबंध करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी पर उस व्यक्ति की अभिरक्षा को धारण करने वाले पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के लिए बाध्यकर होना चाहिए कि अन्वेषण आरंभ करने के पूर्व उसकी चिकित्सीय जांच कराए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

शिक्षाशास्त्रियों ने विधि आयोग के इस प्रस्ताव का समर्थन किया और सकारात्मक उत्तर दिया किन्तु उन्होंने शंका व्यक्त की कि क्या ऐसा चिकित्सा अधिकारी दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों या आदिवासी क्षेत्रों में गिरफ्तार व्यक्तियों को उपलब्ध होगा । इस तथ्य के होते हुए भी, उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के संशोधन पर जोर किया और किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने के पूर्व उसकी चिकित्सीय जांच कराना पुलिस के लिए बाध्यकारी बनाया ।

न्यायाधीशों के विचार

छह अधिवक्ताओं में से दो ने प्रस्ताव का समर्थन किया है और गिरफ्तार व्यक्ति की चिकित्सीय जांच का उपबंध करने के लिए सिफारिश की हैं, उनमें से एक ने सीधा उत्तर देने से विचलन किया और तीन ने प्रस्ताव का विरोध किया क्योंकि वे इसे आवश्यक नहीं समझते हैं, एक अधिवक्ता ने सलाह दी है कि चिकित्सीय जांच के अतिरिक्त, जो आवश्यक है, जब भी किसी गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना समाधान करना चाहिए कि गिरफ्तारी पुलिस द्वारा अभिलिखित तारीख और समय पर हुई थी न कि उस के पहले और गिरफ्तार व्यक्ति को उसे न्यायालय में पेश करने के पूर्व कोई यातना नहीं दी गई । उच्चतम न्यायालय के एक ज्येष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि अभिरक्षाधीन व्यक्ति को दंड प्रक्रिया की धारा 54 के अधीन चिकित्सीय जांच का अधिकार प्राप्त है, किन्तु पुलिस अधिकारी को भी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करते समय सूचित करना चाहिए कि उसे चिकित्सा अधिकारी द्वारा जांच किए जाने का अधिकार प्राप्त है ।

पुलिस अधिकारियों के विचार

तीन में से, एक अनुभव करता है कि ऐसा कोई उपबंध करने की आवश्यकता नहीं है, एक अन्य कहता है कि विधि का संशोधन न किया जाए किन्तु प्रशासनिक आदेश दिए जाएं कि यदि गिरफ्तारी के समय कोई व्यक्ति दुर्बल, क्षतिग्रस्त आदि पाया जाता है तो उसकी चिकित्सीय जांच की जानी चाहिए । तीसरा विधि आयोग के प्रस्ताव के पक्ष में हैं परन्तु तब जब चिकित्सा अधिकारी पुलिस थाने के निकट उपलब्ध हो ।

राज्य सरकारों के विचार

नौ राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों से प्राप्त सभी उत्तर प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं । आन्ध्र प्रदेश सरकार कहती है कि इसका सभी मामलों में अनुसरण करना सम्भव नहीं है । इसका उन्हीं मामलों में अनुसरण किया जा सकता है जहां गिरफ्तार व्यक्ति या उसका काउंसेल अथवा उसके नातेदार चिकित्सीय जांच के लिए अनुरोध करते हैं । ऐसा होने पर पुलिस ऐसा अनुज्ञात करने के लिए आबद्धकर होगी ।

4. पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध उपधारणा :

विवाद्यक सं० 4

क्या अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को कारित किसी क्षति या मृत्यु होने की दशा में पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध उपधारणा करने के लिए उपबंध हेतु भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का संशोधन करना चाहिए ? क्या यह उपधारणा खंडन करने योग्य होनी चाहिए ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दो शिक्षाशास्त्रियों में से एक ने सकारात्मक उत्तर दिया है । दूसरे ने इस विवाद्यक छुआ ही नहीं ।

न्यायाधीशों के विचार

पांच न्यायाधीशों में से, उनमें से लगभग सभी अभिरक्षा में मृत्यु के मामले में उपधारणा के पक्ष में हैं और इसका सकारात्मक उत्तर दिया है । उनमें से एक जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय से न्यायमूर्ति रिजवी कहते हैं कि उपधारणा खंडन योग्य होनी चाहिए । न्यायाधीशों में से एक ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के संशोधन का सुझाव दिया है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अधीन उपधारणा खंडन योग्य होनी चाहिए । श्री न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्र का विचार है कि लोक भावना उपधारणा करने के पक्ष में प्रतीत होती है । किन्तु गंभीर क्षति और मृत्यु के मामलों में अपवाद किया जा सकता है और ऐसे मामलों में खंडन योग्य उपधारणा साबित की जा सकती है ।

अधिवक्ताओं के विचार

सात उत्तरों में से पांच खंडन योग्य उपधारणा के पक्ष में हैं । वे अनुभव करते हैं कि एक बार साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन उपधारणा सम्मिलित हो जाती है तो इसका निश्चित रूप से गिरफ्तार व्यक्ति पर वर्तमान अभिरक्षा संबंधी क्रूरता या यातना में लोक सेवक या पुलिस अधिकारी की समृद्धि को निवेधित और नियमित करने में दूरगामी प्रभाव होगा ।

पुलिस अधिकारियों के विचार

विधि आयोग द्वारा प्राप्त बारह विचारों में से तीन ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों ने उपधारणा के प्रस्ताव का समर्थन किया है और शेष ने उसका विरोध किया है । जो विरुद्ध हैं उन्होंने कहा है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है । उच्चतर रैंक के पुलिस अधिकारियों को यातना पद्धति पर कोई आपेक्ष नहीं है ।

राज्य सरकारों के विचार

नौ राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों में से चार उपधारणा के विचार के विरुद्ध हैं और पांच का यह उपधारणा करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का संशोधन करने के बारे में कोई आक्षेप प्रतीत नहीं होता, कि अभिरक्षा के दौरान कारित क्षति उस अधिकारी ने कारित की है, जिसकी अभिरक्षा में विनिर्दिष्ट समय पर वह व्यक्ति था । आन्ध्र प्रदेश की सरकार अनुभव करती है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (क) और 114 (ख) में अंतर्विष्ट उपबंध यदि अभिरक्षा संबंधी अपराधों को विस्तारित किए जाते हैं तो संबंधित पुलिस अधिकारी जवाबदेह बनाया जाएगा और अभिरक्षा संबंधी अपराधों पर नियंत्रण लग सकता है । मिजोरम और पांडिचेरी की सरकारें इस विचार का अनुसरण करती है । गोवा और मेघालय की सरकारें भी इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं । गोवा की सरकार यह भी कहती है कि यह विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए कि क्या उपधारणा का फायदा और उपहति के मामलों में ही लागू होता है या साधारण क्षति के मामलों में भी लागू होता है ।

5. जांच करने के स्वतंत्र अभिकरण :

विवाद्यक सं० 5

विधि आयोग द्वारा उठाया गया पांचवा विवाद्यक यह था कि क्या विधि में पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की यातना या मृत्यु की शिकायत की जांच करने के लिए स्वतंत्र अभिकरण का उपबंध होना

चाहिए। वह अभिकरण क्या होना चाहिए ? विधि आयोग ने एक और भी प्रश्न उठाया कि क्या इससे प्रयोजन सिद्ध हो जाएगा यदि यातना और क्षति के मामले में जांच न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा और मृत्यु के मामले में जिले के सेशन न्यायाधीश द्वारा की जाती है ? क्या उन्हें सी आई डी या अपनी पसंद के किसी पुलिस अधिकारी की सहायता प्राप्त हो जाएगी ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

शिक्षाशास्त्रियों ने अभिरक्षा संबंधी अपराधों में जांच करने के लिए स्वतंत्र अभिकरण के पक्ष में विचार व्यक्त किया। उनमें से एक आगे कहता है कि महिला आयोग अधिनियम स्वतंत्र अभिकरण के लिए उपबंध करता है।

न्यायाधीशों के विचार

सभी पांचों न्यायाधीश विधि में अन्वेषण के मामलों के लिए स्वतंत्र अभिकरण का उपबंध करने के पक्ष में हैं। एक उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने सुझाव दिया है कि क्रमशः अभिरक्षा संबंधी हिंसा और अभिरक्षा संबंधी मृत्यु की रिपोर्टों का संज्ञान करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और सेशन न्यायाधीश को सशक्त करना वस्तुतः उचित होगा। ऐसा करके पुलिस अधिकरणों का पर्यवेक्षण न्यायिक अधिकारियों द्वारा किया जाएगा। अन्य न्यायाधीश ने संकेत दिया कि नया गठित किया गया मानवाधिकार आयोग उचित अधिकरण होगा

अधिवक्ताओं के विचार

एक अधिवक्ता को छोड़कर, जिसने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया है, उनमें से शेष विधि आयोग के इस सुझाव से सहमत हैं कि अभिरक्षा संबंधी मृत्यु या अभिरक्षा के दौरान यातना के अन्वेषण के लिए एक स्वतंत्र अभिकरण आवश्यक है। वे अनुभव करते है कि यदि जांच, यथास्थिति, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट या ज्येष्ठ न्यायाधीश द्वारा की जाती है तो दंड प्रक्रिया संहिता को अपराध का विचारण करने के प्रयोजन के लिए पर्याप्त सारवान रूप में परिवर्तित करना होगा। उन्होंने कहा कि पुलिस प्रशासन को ऐसी जांच में भाग लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए। वे अनुभव करते हैं कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो पुलिस प्रशासन का भाग होने के कारण, जनता के विश्वास के लिए बेहतर स्थिति में नहीं है।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह में से केवल तीन स्वतंत्र अभिकरण के पक्ष में हैं। दिल्ली के एक भूतपूर्व पुलिस आयुक्त यातना या अभिरक्षा संबंधी मृत्यु की जांच पड़ताल करने के लिए प्रत्येक राज्य में कार्यरत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में सरकार के अधीन एक पृथक् संगठन की स्थापना को अधिमान देते हैं। पुलिस अधिकारियों की बहु संख्या ऐसे किसी अभिकरण के पक्ष में नहीं है। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र में अभिरक्षा-संबंधी मृत्यु या अभिरक्षा संबंधी हिंसा अथवा बलात्संग के मामलों का राज्य सी आई डी द्वारा अन्वेषण करने के लिए राज्य सरकार का आदेश है और अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार की रीति का अनुसरण किया जाता है। तमिलनाडु में पुलिस यातना अभिरक्षा में मृत्यु, बलात्संग, आदि के मामलों में पी०एस०ओ० 445 वाल्यूम I प्रक्रिया के बारे में रखा गया है और अन्य लोक सेवकों के लिए अन्वेषण पुलिस द्वारा किया जाता है तथा विधि के अनुसार कार्रवाई की जाती है। वास्तविक अनुभव के अनुसार कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा अन्वेषण पर्याप्त है। उनके अनुसार विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझाव उपयोगी नहीं होंगे क्योंकि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों और सेशन न्यायाधीशों के पास पहले से ही अधिक काम है और जांच में अधिक समय लगेगा और फिर मामला रजिस्टर किया जाएगा। ऐसे मामलों का अन्वेषण राज्य सी आई डी या किसी केन्द्रीय स्वतंत्र पुलिस अभिकरण द्वारा आज्ञापक करना और ऐसे किसी मामले में, जहां ऐसे किसी अभिकरण द्वारा अन्वेषण संतोषप्रद नहीं है, मानवाधिकार द्वारा अन्वेषण करने के लिए उपबंध करना उपयोगी होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

अधिकतर राज्यों सरकारें/संघ राज्यक्षेत्र स्वतंत्र अभिकरण के सुझाव के विरुद्ध हैं। इनमें से एक ने सुझाव दिया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 176 के अधीन किसी मजिस्ट्रेट द्वारा जांच उपयोगी

होगी। आंध्र प्रदेश की सरकार अनुभव करती है कि अध्यादेश द्वारा सृजित दोनों केन्द्रीय और राज्य स्तर पर, मानवाधिकार आयोग के पास पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति की मृत्यु या यातना की शिकायतों की अन्वेषण के लिए अपना तंत्र है। किसी अन्य अभिकरण की आवश्यकता नहीं है। मिजोरम और पांडिचेरी सरकारें इस दृष्टिकोण का अनुसरण करती है।

कर्नाटक सरकार का विचार है कि यातना या पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु के मामलों की पूर्ण अन्वेषण के लिए किसी स्वतंत्र अभिकरण की सुपुर्दगी के बारे में दो राय नहीं हैं। यह आगे कहती है कि ऐसे सभी मामलों की जांच न्यायिक प्राधिकारियों को सुपुर्द करना उपयुक्त नहीं होगा। कर्नाटक में अभिरक्षा संबंधी मृत्यु के मामलों को सी आई डी को निर्दिष्ट किया जाता है। अभिरक्षा यातना के मामलों में भी विभागीय तौर पर कार्रवाई की जाती है।

मेघालय सरकार का विचार है कि ऐसी आज्ञापक जांच कार्यवाही मजिस्ट्रेट द्वारा की जा सकती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 176 में संशोधन की आवश्यकता है। मजिस्ट्रेट सी आई डी या अपनी पसंद के किसी पुलिस अधिकारी की सहायता ले सकता है।

पश्चिमी बंगाल की सरकार का विचार है कि यातना या अभिरक्षा में मृत्यु की दशा में यह पर्याप्त होगा यदि अधिकारिता रखने वाला कोई न्यायिक मजिस्ट्रेट जांच करता है। उसे दांडिक जांच विभाग या अधिकारिता के भीतर किसी पुलिस अधिकारी की सहायता प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता होगी। बिहार और गोवा की सरकारें प्रस्ताव के विरुद्ध हैं।

अभियोजन के लिए मंजूरी :

विवाद्यक सं० 6

क्या कोई दांडिक मामला "अपचारी पुलिस अधिकारी या लोक सेवक के विरुद्ध बिना किसी अतिरिक्त अन्वेषण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन ऐसे अपचारी लोक सेवक के अभियोजन के लिए सरकार की मंजूरी प्राप्त किए बिना रजिस्टर किया जाना चाहिए यदि यातना, क्षति या मृत्यु का प्रथमदृष्ट्या मामला पाया जाता है ?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 का संशोधन किया जाना चाहिए ?

न्यायाधीशों के विचार

उन सभी न्यायाधीशों ने, जिन्होंने अपने विचार भेजे हैं, विवाद्यक का सकारात्मक उत्तर दिया है। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के अनुसार न्यायिक राय स्पष्ट है और अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

अधिवक्ताओं के विचार

छह अधिवक्ता में से पांच अधिवक्ता विधि आयोग के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के संशोधन के प्रस्ताव से सहमत हो गए हैं, एक ने सुझाव दिया है कि अपचारी अधिकारी को तत्काल निलम्बनाधीन कर देना चाहिए। उच्चतम न्यायालय का एक ज्येष्ठ अधिवक्ता दांडिक मामले के रजिस्ट्रीकरण के विरुद्ध है। वह महसूस करता है कि न्यायालय को मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के आधार पर मामले का संज्ञान करना चाहिए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह से दस ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों का विचार है अपचारी अधिकारी के विरुद्ध दांडिक मामला रजिस्ट्रीकृत किया जाना चाहिए और सरकार की किसी मंजूरी की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन आवश्यकता नहीं है। किन्तु पुलिस की अभिरक्षा से भागने और एक पुलिस से दूसरी की अन्तरण के समय रेल गाड़ी से कूद जाने जैसी परिस्थितियों में मंजूरी के बिना अभियोजन अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों का उत्तर

नौ में से पांच के विचार अंतरिम प्रतिकर के पक्ष में हैं और चार ऐसे प्रस्ताव के विरुद्ध हैं। आन्ध्र प्रदेश सरकार का विचार है कि अंतरिम प्रतिकर के संदाय के लिए उपबंध उस समय अत्यावश्यक है जब प्रथमदृष्ट्या मामला बन जाता है। पांडिचेरी और मिजोरम सरकारें भी इस विचार का समर्थन करती हैं। बिहार और गोवा सरकारें भी इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं।

अधिकारियों से वसूली

विचारक सं० 9

क्या विधि द्वारा सरकार को अपचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम वसूल करने के लिए शक्ति प्रदत्त की जानी चाहिए?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

दोनों का विचार है कि अपचारी अधिकारी से प्रतिकर की रकम पूर्णतः या भागतः वसूल की जानी चाहिए किन्तु एक ने शंका व्यक्त की है कि व्यष्टि पुलिसजन से धन कैसे संगृहीत किया जाएगा।

न्यायाधीशों के विचार

पांच न्यायाधीशों में से चार सरकार की बजाय व्यष्टि से रकम वसूलने के पक्ष में हैं। एक ने मुद्दे का प्रत्यक्षतः उत्तर नहीं दिया है। उनमें से सभी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है कि वसूली अपचारी अधिकारी से की जानी चाहिए। एक ने सुझाव दिया है कि वसूली उस सीमा तक की जानी चाहिए। जिस तक यह साध्य है अन्य अधिवक्ता का विचार है कि वसूली उपहति, यातना या क्षति अथवा मृत्यु कारित करने वाली विधि का घोर उपेक्षा के मामलों में ही अधिरोपित की जानी चाहिए।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह पुलिस अधिकारियों में से केवल तीन इस पक्ष में हैं जब कि शेष आठ प्रतिकर की वसूली से असहमत हैं तथा एक का विचार है कि यह सरकार के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

नौ में से तीन अपचारी अधिकारी से रकम की वसूली करने के पक्ष में हैं तथा दो राज्य सरकारें 50 प्रतिशत की सीमा तक अपचारी अधिकारी से वसूली के पक्ष में हैं। पांडिचेरी की सरकार का विचार है कि कम से कम प्रतिकर की थोड़ी प्रतिशतता तो अपचारी अधिकारी से वसूलीय होनी चाहिए। गोवा सरकार इस प्रस्ताव से असहमत है। आन्ध्र प्रदेश सरकार इस मुद्दे पर सावधानी पूर्वक विचार करने का सुझाव देती है कि क्योंकि यह सोचनीय मुद्दा है। मिजोरम सरकार भी इस विचार का समर्थन करती है। कर्नाटक सरकार का विचार है कि प्रतिकर की मात्रा विचारण न्यायालय अवधारित करेगा इसलिए किसी अन्य उपबंध की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्तावित संशोधनों का पुलिस कृत्यकारियों पर प्रभाव :

विचारक सं० 10

क्या उपरोक्त कदम पुलिस के कार्य करने और उसके मनोबल को अन्वेषण के मामलों में प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं करेंगे, और इसके अतिरिक्त क्या इसका परिणाम अपराधों का अन्वेषण न करना नहीं होगा, जो लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगा। इन परिस्थितियों से बचने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिएं?

शिक्षाशास्त्रियों के विचार

इस मुद्दे का किसी भी शिक्षाशास्त्री ने प्रत्यक्ष रूप से उत्तर नहीं दिया है।

न्यायाधीशों के विचार

पांच न्यायाधीशों में से दो का विचार है कि इसका प्रतिकूल प्रभाव होगा और दो का विचार है कि इसका पुलिस के मनोबल पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। एक ने इस मुद्दे का उत्तर ही नहीं दिया।

अभिवक्ताओं के विचार

उन सभी छह अधिवक्ताओं ने, जिन्होंने उत्तर दिए हैं, कहा है कि इससे पुलिस का मनोबल प्रभावित नहीं होगा और अन्वेषण भी प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं होगा।

पुलिस अधिकारियों के विचार

बारह पुलिस अधिकारियों में से छह कहते हैं कि इससे मनोबल प्रभावित नहीं होगा। पांच का विचार है कि इसका कोई प्रभाव नहीं होगा।

राज्य सरकारों/संघ राज्यक्षेत्रों के विचार

नौ प्राप्त उत्तरों में से पांच राज्य सरकारें/संघ राज्यक्षेत्र इस विचार से सहमत नहीं हैं। पश्चिमी बंगाल सरकार ने सुझाव दिया है कि एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए राजस्थान सरकार इस बात पर जोर देती है कि सिफारिश किए गए अल्पकालिक कदमों से पुलिस के कृत्य करने में कुछ अव्यवस्था आएगी और पुलिस मनोबल में भी कमी आएगी किन्तु अंततः उनसे पुलिस ज्यादतियों को कम करने में सहायता मिलेगी। एक बार इन कदमों का कार्यान्वयन होने से पुलिस को काफी दबावों के अधीन कृत्य करना पड़ेगा और न्यायालयों को इसका संज्ञान करना चाहिए। न्यायालयों को अपराध में फंसाने वाली सामग्री की वसूली के लगभग अभाव को ध्यान में रखना होगा और मौखिक साक्ष्य पर विश्वास करना पड़ेगा। इस प्रकार साक्ष्य विधि का नया निर्वचन सामने आएगा और पुलिस अन्वेषण में न्यायालयों के विश्वास के अभाव में अन्ततोगत्वा लोक व्यवस्था प्रतिकूलतः प्रभावित होगी।

आन्ध्र प्रदेश सरकार का विचार है कि कार्यपत्र में प्रकल्पित कदम पुलिस के कृत्य करने और मनोबल को प्रभावित नहीं करेंगे। दूसरी ओर पुलिस की ज्यादती को न्यूनतम तक कम किया जा सकता है। अतः पुलिस सुधारों की अत्यन्त आवश्यकता है और इनका आगे स्थगन करना असहनीय है। मिजोरम और पांडिचेरी की सरकारें इस विचार का समर्थन करती हैं। कर्नाटक सरकार का कहना है कि इससे पुलिस के कार्य करने और मनोबल पर आवश्यक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे मामलों का अन्वेषण कर रहे हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि अपराधों का अन्वेषण करने के दौरान उत्पीड़न की पद्धतियों का प्रयोग न किया जाए, यह आत्यन्तिक रूप से आवश्यक है कि अभियुक्त व्यक्तियों की मृत्यु को रोकने के लिए कुछ रक्षोपाय किए जाएं। किन्तु दोषी पुलिस अधिकारियों को दंड देने से किसी भी रूप में यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि अन्वेषण अधिकारी का मनोबल कम किया जा रहा है। अन्वेषण अधिकारी को अपनी सीमाएं मालूम होनी चाहिए और उसे ऐसी अनियंत्रित शक्ति नहीं होनी चाहिए, जो नागरिकों के हितों के लिए अहितकर हो सकती है।

85-एम०जे०(डी) 1270एम० ऑफ एल०जे० एंड सी०ए०— —16-12-86—मा०स०मु० शिमला

PLD 92. CL II (Hindi)
100—1995 (DSK-IV)

मूल्य : देश में—रुपये 1145.50 पैसे; विदेश में—पौंड 44-10 शिलिंग 7 पैंस अथवा डॉलर 68-73 सैन्ट्स

1997
प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय शिमला द्वारा मुद्रित तथा
प्रकाशन नियन्त्रक सिविल लाईन्स दिल्ली द्वारा प्रकाशित